1.1

विज्ञान शिक्षण

राष्ट्रीय फोकस समूह

का

आधार पत्र

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

प्रथम संस्करण
दिसंबर 2008 पौष 1930

PD 3T NSY

रु 25.00

प्रकाशन विभाग में सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नयी दिल्ली 110 016 द्वारा प्रकाशित तथा बंगाल ऑफसैट वर्क्स, 335, खजूर रोड, करोलबाग, नयी दिल्ली 110 005 द्वारा मुद्रित।

ISBN 978-81-7450-919-2

एन सी ई आर टी के प्रकाशन विभाग के कार्यालय

एन.सी.ई.आर.टी. कैंपस
श्री अरविंद मार्ग
नयी दिल्ली 110 016 फोन : 011-26562708

108, 100 फीट रोड
होस्डेकेरे हेली एक्सटेंशन
बनाशंकरी III स्टेज
बेंगलुरु 560 085 फोन : 080-26725740

नवजीवन ट्रस्ट भवन
डाकघर नवजीवन
अहमदाबाद 380 014 फोन : 079-27541446

सी.डब्ल्यू.सी. कैंपस
निकट: धनकल बस स्टॉप पनिहटी
कोलकाता 700 114 फोन : 033-25530454

सी.डब्ल्यू.सी. कॉम्प्लैक्स
मालीगांव
गुवाहाटी 781021 फोन : 0361-2674869

प्रकाशन सहयोग

अध्यक्ष, प्रकाशन विभाग : *पेय्येटि राजाकुमार*
मुख्य उत्पादन अधिकारी : *शिव कुमार*
मुख्य संपादक : *श्वेता उप्पल*
मुख्य व्यापार प्रबंधक : *गौतम गांगुली*
संपादक : *नरेश यादव*
उत्पादन : *अरुण चितकारा*

सज्जा एवं आवरण
श्वेता राव

सार-संक्षेप

1. एक आदर्श विज्ञान पाठ्यचर्या के मानदंड

विज्ञान की अच्छी शिक्षा वही है जो विद्यार्थी के प्रति, जीवन के प्रति और विज्ञान के प्रति ईमानदार हो। इस तरह का दृष्टिकोण विज्ञान पाठ्यचर्या के कुछ मूलभूत मानदंडों की ओर अग्रसर करता है जो कि नीचे दिए गए हैं:

क) *संज्ञानात्मक वैधता* यह माँग करती है कि पाठ्यचर्या की विषय-वस्तु, प्रक्रिया, भाषा और शिक्षण संबंधी कार्यकलाप बच्चे की उम्र के उपयुक्त हों और उसकी समझ से बाहर की चीज़ न हों।

ख) *विषय-वस्तु वैधता* यह माँग करती है कि पाठ्यचर्या उपयुक्त व वैज्ञानिक स्तर पर सही विषय-वस्तु को प्रस्तुत करे। यूँ तो बच्चे की समझ के स्तर के अनुसार विषय-वस्तु को सहज और सरल रूप में रखना ज़रूरी हो जाता है, लेकिन इस प्रक्रिया में यह ध्यान रखने की ज़रूरत है कि जो कुछ कहने की कोशिश की जा रही है, वह अर्थहीन व विरूपित होकर न रह जाए।

ग) *प्रक्रिया वैधता* यह माँग करती है कि पाठ्यचर्या विद्यार्थी को वैज्ञानिक ज्ञान प्राप्त करने के तरीकों और उन तक पहुँचने की प्रक्रिया को सिखाए और बच्चे की सहजात जिज्ञासा और रचनात्मकता को पोषित करे। प्रक्रिया वैधता एक महत्त्वपूर्ण मापदंड है, क्योंकि यह विद्यार्थी को विज्ञान कैसे सीखा जाए यह सिखाने में मदद करती है।

घ) *ऐतिहासिक वैधता* यह माँग करती है कि विज्ञान-पाठ्यचर्या में ऐतिहासिक बोध को जगह दी जाए, ताकि विद्यार्थी समझ सकें कि विज्ञान की धारणाएँ समय के साथ कैसे विकसित हुईं। यह विद्यार्थी को यह समझाने में भी मदद करेगी कि विज्ञान एक सामाजिक उद्यम है और किस प्रकार विज्ञान का विकास सामाजिक कारकों से प्रभावित होता है।

ङ) *पर्यावरणीय वैधता* यह माँग करती है कि विज्ञान को विद्यार्थी के व्यापक परिवेश, स्थानीय और वैश्विक, के संदर्भ में रखकर सिखाया जाए ताकि विद्यार्थी विज्ञान, प्रौद्योगिकी और समाज के बीच के जटिल संबंधों को समझ सके और रोज़गार की दुनिया में टिकने के लिए आवश्यक ज्ञान और कौशल प्राप्त कर सकने में सक्षम हो सके।

च) *नैतिक वैधता* यह माँग करती है कि पाठ्यचर्या ईमानदारी, वस्तुनिष्ठता, सहयोग, आदि जैसे मूल्यों का संवर्द्धन करे और भय, पूर्वाग्रह एवं अंधविश्वास से मुक्त मानस तैयार करने में सहायक हो। साथ ही विद्यार्थी में जीवन व पर्यावरण के संरक्षण के प्रति चेतना पैदा करे।

2. विभिन्न स्तरों पर विज्ञान की पाठ्यचर्या

पहले ही दिए गए मापदंडों के साथ-साथ लक्ष्य, विषयवस्तु, शिक्षाशास्त्र और मूल्यांकन को ध्यान में रखते हुए विभिन्न स्तरों के लिए विज्ञान की पाठ्यचर्या संबंधी सुझाव नीचे दिए जा रहे हैं।

प्राथमिक स्तर– इस स्तर पर बच्चे को अपने परिवेश में घुलने-मिलने और साथ ही खुशी-खुशी इसकी छानबीन हेतु तैयार करना चाहिए। इस स्तर पर मुख्य उद्देश्य हैं: बच्चे में अपने आसपास की दुनिया (प्राकृतिक वातावरण, शिल्प तथ्यों एवं लोगों) के प्रति उत्सुकता को परिपोषित करना, उसे खोजी कार्यों की ओर अग्रसर करने के

साथ-साथ ऐसे कार्यकलापों में संलग्न करना जो अवलोकन, वर्गीकरण, निष्कर्ष आदि के द्वारा मूलभूत संज्ञानात्मक क्षमताएँ, मन:प्रेरक कौशल, निरीक्षण, वर्गीकरण इत्यादि विकसित करें। डिज़ाइन और गढ़ाई, अनुमान व मापन जैसे कार्यों की ओर उन्मुख करे जिससे बाद में ये सभी तकनीकी व रचनात्मक क्षमताएँ विकसित होने में नींव का काम कर सकें। साथ ही इस स्तर पर मूलभूत भाषिक क्षमता को विकसित किया जाना चाहिए जिसमें बोलना, पढ़ना और लिखना शामिल हैं। ऐसा केवल विज्ञान पढ़ने के लिए नहीं बल्कि विज्ञान पढ़ते हुए भी करना ज़रूरी है। विज्ञान और सामाजिक विज्ञान को मिलाकर पर्यावरण अध्ययन करना उचित होगा जिसमें स्वास्थ्य एक महत्त्वपूर्ण अवयव हो। प्राथमिक स्तर की पूरी अवधि में किसी भी प्रकार की कोई परीक्षा न ली जाए न ही ग्रेड या अंक दिए जाएँ और न ही अगली कक्षा में जाने से रोका जाए।

उच्च प्राथमिक स्तर–इस स्तर पर बच्चों को विज्ञान के सरल सिद्धांतों की जानकारी देनी चाहिए लेकिन ऐसा आस-पास के परिचित दुनिया के माध्यम से ही होना चाहिए। साथ ही इसे तकनीकी इकाइयाँ और मॉड्यूल बनाने (उदाहरण के लिए कार उठाने के लिए पवन चक्की के संचालित मॉडल का डिज़ाइन बनाना तथा मॉडल भी बनाना) और सर्वे व अन्य कार्यकलापों के माध्यम से पर्यावरण तथा स्वास्थ्य के बारे में ज़्यादा से ज़्यादा जानने की ओर प्रेरित करना चाहिए। वैज्ञानिक सिद्धांतों के बारे में जानकारी, प्रयोगों व कार्यकलापों के माध्यम से ही उचित है। विज्ञान की विषय वस्तु इस स्तर पर माध्यमिक स्तर के विज्ञान का हल्का रूप नहीं होनी चाहिए। सामूहिक कार्यकलाप, साथियों और शिक्षकों के साथ बहस, आँकड़ों के संग्रह और स्कूल एवं पड़ोस में इन सबका प्रदर्शनी के माध्यम से डिसप्ले, शिक्षण के महत्त्वपूर्ण अवयव होने चाहिए। नियमित व सावधिक मूल्यांकन (इकाई एवं सत्रांत परीक्षाएँ) शुरू कर देना चाहिए। सीधे ग्रेड देने की व्यवस्था होनी चाहिए। किसी भी बच्चे को फेल नहीं किया जाना चाहिए। आठवीं तक पढ़ चुके सभी विद्यार्थियों को नौवीं में प्रवेश दे देना चाहिए।

माध्यमिक स्तर–इस स्तर पर विद्यार्थी को विज्ञान का परिचय एक संयुक्त विषय के रूप में दिया जाना चाहिए, साथ ही पहले की तुलना में ज़्यादा उच्च तकनीकीपरक मॉड्यूल बनाने के लिए भी प्रोत्साहित करना चाहिए। और उन्हें पर्यावरण तथा स्वास्थ्य के इर्द-गिर्द घूमने वाले मुद्दों के विश्लेषण और गतिविधियों में जोड़ना चाहिए। सैद्धांतिक नियमों को जाँचने के लिए उपकरण के रूप में व्यवस्थित प्रयोग तथा सार्थक स्थानीय परियोजनाएँ जिसमें विज्ञान और प्रौद्योगिकी शामिल हों, इस अवस्था में पाठ्यचर्या के महत्त्वपूर्ण भाग हैं।

उच्च माध्यमिक स्तर–इस स्तर पर विज्ञान अलग-अलग संकायों के रूप में पढ़ाया जाना चाहिए, तथा बल प्रयोगों और समस्या समाधान पर होना चाहिए। एन.पी.ई. 1986 के तहत शुरू की गई शिक्षा की दो धाराओं – अकादमिक और वोकेशनल - पर आज के दौर के अनुसार फिर से विचार करने की ज़रूरत है। हमारे हिसाब से विद्यार्थियों को इन दोनों ही धाराओं से विषय चुनने की छूट होनी चाहिए। यद्यपि यह संभव नहीं है कि प्रत्येक विद्यालय में सभी विषय उपलब्ध कराए जाएँ। माध्यमिक व उच्चतर माध्यमिक पाठ्यक्रमों के बीच के गहरे अंतर को हटाने के लिए पाठ्यचर्या के बोझ को तर्कसंगत होना चाहिए। इस स्तर पर, विषय के मुख्य पाठों की, क्षेत्र में हुई वर्तमान प्रगति को ध्यान में रखते हुए, सावधानीपूर्वक पहचान की जानी चाहिए। उन्हें उपयुक्त सख़्ती तथा गहराई से शामिल किया जाना चाहिए। ढेरों विषयों की सतही जानकारी देने के प्रयास से बचना चाहिए।

3. समस्याएँ एवं दृष्टिकोण

भारत में विज्ञान शिक्षा के इस जटिल परिवेश में तीन मुद्दे मुख्यत: ग़ौर करने लायक हैं–पहला, हमारे संविधान ने जिस समता की बात की, उसे प्राप्त करने में विज्ञान-शिक्षा अभी तक बहुत दूर है। दूसरा, भारत में विज्ञान

शिक्षा खोजी प्रवृत्ति व रचनात्मकता को बढ़ावा नहीं दे पाती है तथा तीसरा, विकराल परीक्षा-पद्धति, यदि पूर्ण रूप से नहीं तो काफ़ी हद तक यह विज्ञान शिक्षा के मुख्य संकटों में से एक है।

इस आधार पत्र में फोकस समूह ने विज्ञान पाठ्यचर्या से संबंधित विभिन्न मुद्दों और उनको कार्यान्वित करने की राह में आई बाधाओं पर विचार किया है लेकिन ध्यान मुख्यत: तीन मुद्दों पर ही रखा गया है जिनकी ओर इशारा उपरोक्त पैराग्राफ़ में किया गया है।

पहला–वर्ग, जाति, जेंडर व क्षेत्र के आधार पर समाज में व्याप्त विषमता को कम करने के लिए हमें विज्ञान पाठ्यचर्या का एक साधन के रूप में उपयोग करना होगा। पाठ्यपुस्तकें समता की सूचक होनी चाहिए, क्योंकि अधिकांश पढ़ने वाले बच्चों और शिक्षकों के लिए अभी भी यही एकमात्र उपलब्ध व कम खर्च वाला संसाधन है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा के दिशा निर्देशन में वैकल्पिक पाठ्यपुस्तक लेखन को बढ़ावा देना चाहिए। सूचना एवं संचार तकनीकी, (इंफ़ॉरमेशन एंड कम्युनिकेशन टैक्नोलॉजी-आई.सी.टी.) सामाजिक विषमता को कम करने में सहायक हो सकती है। दूरदराज इलाकों तक सूचना, संचार और कंप्यूटिंग संसाधन के रूप में आई. सी.टी., अवसरों की समानता के लिए महत्त्वपूर्ण साबित हो सकती है।

दूसरा– हमारे अनुसार वर्तमान स्थिति से किसी भी तरह के गुणात्मक परिवर्तन के लिए विज्ञान-शिक्षा में ढाँचागत बदलाव लाने पड़ेंगे। रटकर सीखने की प्रवृत्ति को खत्म किया जाना चाहिए। पड़ताल या खोजी अंतर्दृष्टि को भाषा, डिज़ाइन व मात्रात्मक कौशलों द्वारा मजबूत करना होगा। स्कूलों में सह-पाठ्यचर्या व पाठ्यचर्येतर तत्वों को जगह देना ज़रूरी है, जो पड़ताल की क्षमता, खोजी प्रवृत्ति और रचनात्मकता को जागृत करें, भले ही इन तत्वों को बाह्य परीक्षा व्यवस्था में शामिल न किया जाए। अनौपचारिक चैनलों के विस्तार के लिए हम बल देते हैं (उदाहरण के लिए पंचायत/जिला/राज्य स्तर के मेलों के साथ बड़े स्तर के राष्ट्रीय विज्ञान और प्रौद्योगिकी मेलों का आयोजन हो)। इससे स्कूलों व शिक्षकों को प्रस्तावित ढाँचागत परिवर्तन के लिए प्रोत्साहन मिलेगा।

तीसरा–हम परीक्षा सुधार कार्यक्रम को राष्ट्रीय मिशन के रूप में (दूसरे अन्य गंभीर राष्ट्रीय मिशन की तरह) लेने का सुझाव देते हैं, जिसमें वित्त व उच्च-क्षमता प्राप्त मानवीय संसाधनों की ज़रूरत पड़ेगी। यह मिशन वैज्ञानिकों, प्रौद्योगिकी से संबंधित लोगों, शिक्षाविदों और शिक्षकों को एक साझे मंच पर आने और परीक्षा के नए तरीकों को 'लांच' करने का अवसर प्रदान करने वाला होना चाहिए। ऐसे तरीके जो परीक्षा की वज़ह से उत्पन्न होने वाले तनाव और प्रवेश परीक्षा की विक्षिप्त कर देनेवाली बहुलता को खत्म करें और महज विद्वत क्षमता की जाँच न करके विविध योग्यताओं की जाँच करें।

लेकिन इस तरह के सुधार तभी संभव हैं, जब शिक्षकों का सशक्तीकरण हो। किए गए सुधारों को लागू करने के लिए ज़रूरी है कि शिक्षक खुद को इतना सशक्त महसूस करें कि इसे वास्तविक रूप में कार्यान्वित कर सकें, अन्यथा अच्छे से अच्छा सुधार केवल बात बनकर रह जाएगी। शिक्षक की सक्रिय भागीदारी से ही सुझाए गए उपरोक्त सुधार संभव हैं और इनका तरंगात्मक प्रभाव एक साथ हमारे स्कूलों के सभी स्तरों के विज्ञान-शिक्षण पर पड़ेगा।

‘विज्ञान का शिक्षण’ के राष्ट्रीय फ़ोकस समूह के सदस्य

प्रो. अरविंद कुमार (अध्यक्ष)
केंद्र निदेशक
होमी भाभा सेंटर फॉर साइंस एजुकेशन
वी.एन. पुरव मार्ग, मैनखुर्द
मुंबई - 400 088
महाराष्ट्र

डॉ. सावित्री सिंह
सेंटर फॉर साइंस एजुकेशन एंड
कम्युनिकेशन
दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली–110 007

सुश्री ज्योति चक्रवर्ती
राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
(एस.सी.ई.आर.टी.), रायपुर
छत्तीसगढ़

श्री रूपक कुमार होम रॉय
प्रधानाध्यापक
बॉलीगंज राजकीय उच्च विद्यालय
कोलकाता–700 020
पश्चिम बंगाल

श्री रेक्स डी. रोज़ारियो
एकलव्य
ई–7/453, एच.आई.जी.
अरेरा कॉलोनी
भोपाल–462 016
मध्य प्रदेश

श्री एस.सी. रथ
राजकीय उच्च विद्यालय, कामगाँव
पोस्ट–बारडोल
जिला–बरगढ़
उड़ीसा

डॉ. एन. रत्नश्री
निदेशक
नेहरू तारामंडल
तीनमूर्ति भवन
नयी दिल्ली–110 011

डॉ. वी.बी. कांबले
निदेशक
विज्ञान प्रसार एवं वैज्ञानिक ‘जी’/सलाहकार
विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग (डी.एस.टी.)
टैक्नोलॉजी भवन
शहीद संसनवाल मार्ग (न्यू महरौली रोड)
नयी दिल्ली–110 016

डॉ. जे.एम. डिसूजा
वैज्ञानिक
विक्रम ए. साराभाई सामुदायिक विज्ञान केंद्र
गुजरात विश्वविद्यालय के सामने
नवरंगपुरा
अहमदाबाद–380 009
गुजरात

प्रो. जयश्री रामदास
होमी भाभा सेंटर फॉर साइंस एजुकेशन
वी.एन. पुरव मार्ग, मैनखुर्द
मुंबई–400 088
महाराष्ट्र

श्री राजेंद्र जोशी
विज्ञान एवं गणित शिक्षा विभाग
डी.ई.एस.एम., एन.सी.ई.आर.टी.
श्री अरविंद मार्ग
नयी दिल्ली–110 016

श्री एच.एल. सतीश
टी.जी.टी. साइंस, डी.ई.एम.एस.
क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान, एस.सी.ई.आर.टी.
मैसूर
कर्नाटक

श्री कमल महेंद्रू (सहायक-सदस्य)
निदेशक
एकलव्य
ई–7/453, एच.आई.जी.
अरेरा कॉलोनी
भोपाल–462 016
मध्य प्रदेश

प्रो. जे.एस. गिल (सदस्य सचिव)
विज्ञान एवं गणित शिक्षा विभाग
डी.ई.एस.एम., एन.सी.ई.आर.टी.
श्री अरविंद मार्ग
नयी दिल्ली–110 016

अनुवाद सहयोग

श्री विजय कुमार झा, पो. बाक्स–16, महात्मा गाँधी अंतरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, आरवी रोड, पंछला, वर्धा–442001, महाराष्ट्र

सुश्री फ़रहत रिज़वी, राष्ट्रीय सहारा इंडिया कम्पलैक्स, सहारा वीकली, ई–1234, सैक्टर–2, नोएडा, उत्तर प्रदेश

डा. माधवी कुमार, *प्रवाचक*, केंद्रीय शैक्षिक प्रौद्योगिकी संस्थान, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली

डा. बी. पी. श्रीवास्तव, *प्रवाचक*, विज्ञान एवं गणित शिक्षा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली

श्री मनोज मोहन, पी डी. 64/सी., पीतमपुरा, दिल्ली–110088

डॉ. रंजना अरोड़ा, *प्रवाचक*, पाठ्यचर्या समूह, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली

विषय - सूची

1. परिचय

विज्ञान को पढ़ाए जाने का क्या उद्देश्य होना चाहिए ? अर्थात् विज्ञान की शिक्षा क्यों ? इस प्रश्न का जवाब ढूँढ़ते हुए हमारे सामने अति सामान्य सा प्रश्न उठ खड़ा होता है कि आखिर शिक्षा का उद्देश्य क्या है? संक्षेप में गांधी जी के इस कथन से बेहतर जवाब और क्या हो सकता है : ''सच्ची शिक्षा वही है जो बच्चे की शारीरिक, बौद्धिक और आत्मिक क्षमता को जाग्रत करे और उन्हें सामने लाए।'' इस कथन में जो बात अंतर्निहित है और जिससे हम भी सहमत हैं कि शिक्षा में व्यक्ति व समाज को बदलने की क्षमता है, तो जब विशेष रूप से विज्ञान की शिक्षा की बात हो रही हो तो हमें क्या चाहिए ? यह बात तो साफ़ है कि विज्ञान के उद्देश्य पर किसी भी तरह की बातचीत से पहले हमें इसकी प्रकृति, इसके तरीके, इसकी संभावनाओं और सीमाओं पर गौर करना होगा। तो आइए विज्ञान की शिक्षा पर सोच विचार करने से पहले संक्षेप में हम विज्ञान की प्रकृति पर बात करें।

1.1 विज्ञान की प्रकृति

मनुष्य हमेशा से अपने परिवेश के प्रति जिज्ञासु रहा है। खोजी व कल्पनाशील मानव-मस्तिष्क ने प्रकृति की विचित्र व अचरज भरी घटनाओं को विभिन्न तरीकों से समझने का प्रयास किया। उनमें से जो एक तरीका शुरू से ही बरकरार रहा है वह है- आसपास के जीव-जगत व भौतिक-जगत को गौर से देखना और उसी के अनुसार अर्थपूर्ण पैटर्न एवं संबंधों को खोजने का प्रयास, प्रकृति से जूझने के लिए नए-नए औजारों का निर्माण और इसे समझने के लिए सैद्धांतिक ढाँचे को विकसित करने की ओर अग्रसर होना। यही मानव प्रयास विज्ञान है।

विज्ञान एक जीवंत, नए से नए अनुभवों के अनुसार विस्तार पाता हुआ गतिमान ज्ञान है लेकिन सवाल है कि यह ज्ञान कैसे उत्पन्न होता है ? आखिर क्या है वैज्ञानिक पद्धति ? अन्य कई जटिल चीज़ों की भाँति वैज्ञानिक पद्धति को भी हम सभी जगह पाते हैं, इसकी बात तो सभी जगह होती है, लेकिन इसे परिभाषित करना अपेक्षाकृत कठिन साबित हुआ है। मोटे तौर पर इसके कई चरण हैं जो आपस में संबंधित हैं: गौर से निरीक्षण करना, नियमितताओं और खास पैटर्न की तलाश, संकल्पनाओं को गढ़ना, गणितीय ढाँचे तैयार करना, फिर उनसे निष्कर्ष निकालना, नियंत्रित प्रयोग और निरीक्षण के द्वारा उन निष्कर्षों के सही या गलत होने की जाँच करना और इस तरह अंततः उन सिद्धांतों और नियमों तक पहुँचना जो भौतिक जगत को नियंत्रित करते हैं। इन विभिन्न चरणों में कोई दृढ़ या निश्चित क्रम नहीं है। कभी कोई सिद्धांत हमें नए प्रयोग के लिए रास्ता दिखा देता है, तो कभी कोई प्रयोग किसी नए सिद्धांत को बता जाता है। विज्ञान में अनुमान और अटकलों के लिए भी जगह है, लेकिन अंततः किसी वैज्ञानिक सिद्धांत को सर्वसम्मति से स्वीकार्य होने के लिए उसे उपयुक्त प्रयोगों अथवा निरीक्षणों की कसौटी पर खरा उतरना ही पड़ता है। विज्ञान के नियमों को कभी भी अंतिम सच के रूप में स्वीकार नहीं किया जाता। यहाँ तक कि स्थापित व सार्वभौम नियम भी विज्ञान में स्थायी नहीं माने जाते। नए अनुभव, प्रयोग व विश्लेषण की रोशनी में इन नियमों में बदलाव आता रहता है।

विज्ञान में प्रयोग की जाने वाली इस विधि और दूसरे क्षेत्रों में प्रयोग की जाने वाली विधियों के बीच के अंतर की बहस दार्शनिक स्तर पर आज तक जारी है। इसका यह दावा कि यह वस्तुनिष्ठ और निष्पक्ष है, इसकी समाजशास्त्रीय आलोचना की जा रही है। साथ ही जहाँ विज्ञान, प्रकृति की साधारण रेखीय परिघटनाओं (कारण-प्रभाव) को व्याख्यायित करने में कुशल साबित होता है, वहीं प्रकृति की रेखीय जटिल परिघटनाओं को समझने में इसकी अनुमानात्मक या वर्णनात्मक क्षमता सीमित साबित हुई है। तथापि अपनी सीमाओं और असफलताओं के बावजूद, जहाँ तक भौतिक जगत की बात है, विज्ञान ही एकमात्र सबसे ज़्यादा विश्वसनीय और शक्तिशाली ज्ञान-पद्धति है।

लेकिन अंततः विज्ञान एक सामाजिक परिघटना है। विज्ञान ज्ञान है और ज्ञान शक्ति। शक्ति से ही बुद्धि और आज़ादी मिलती है। कभी-कभी ऐसा भी देखा गया है कि शक्ति घमंड और तानाशाही को भी जन्म देती है। विज्ञान

में हितकारक या हानिकारक, मुक्तिकारी या दमनकारी होने की क्षमता है। बीसवीं सदी का इतिहास विज्ञान की इस दोहरी भूमिका के उदाहरणों से भरा पड़ा है।

तो यह कैसे निश्चित किया जाए कि विज्ञान हमारे लिए मुक्तिकारी भूमिका ही निभाए ? इसके लिए हमें उन मुद्दों की ओर देखना होगा जिन्होंने पूरी मानवता को ही विनाश के कगार पर लाकर खड़ा कर दिया है। और ऐसा तभी संभव है जब सूचनाएँ सर्वसुलभ हों, साफ़गोई हो और तमाम तरह के मतों के प्रति भी सहिष्णुता हो। प्रगति के रास्ते पर चल रहे किसी भी समाज में लोगों को गरीबी अज्ञानता और अंधविश्वास के मकड़जाल से मुक्त कर विकास की दिशा में उन्मुख होने में विज्ञान सकारात्मक भूमिका निभा सकती है। जनतांत्रिक व्यवस्था में विज्ञान के संभावित दुरुपयोग को जनता रोक सकती है। बशर्ते वह जागरूक हो। विवेक के साथ वैज्ञानिक मनोभाव मानव कल्याण के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण रास्ता है। इसी विश्वास की बुनियाद पर हम विज्ञान की शिक्षा की वकालत करते हैं।

1.2 विज्ञान और प्रौद्योगिकी

विज्ञान के साथ जुड़ा हुआ एक मुद्दा यह भी है कि प्रौद्योगिकी को कैसे देखें? प्रौद्योगिकी को प्राय: अनुप्रायोगिक (अप्लायड)विज्ञान के रूप में लिया जाता है, जिसमें मैकेनिकल, इलेक्ट्रिकल, ऑप्टीकल और इलेक्ट्रॉनिक यंत्र व सामान, घरेलू और व्यापारिक वस्तुओं के साथ-साथ रासायनिक, जैविक और नाभिकीय विज्ञान के उत्पाद इत्यादि भी आते हैं। अब तो इस सूची में कंप्यूटर और दूरसंचार भी शामिल हो गए हैं। तकनीकी के ये तमाम प्रकार एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं और इसलिए प्रौद्योगिकी को, खासकर आज की आधुनिक प्रौद्योगिकी को 'अप्लायड साइंस' के रूप में देखना गलत नहीं है। अधिकांश तकनीकियाँ, जो हम अपने आस-पास देखते हैं, वस्तुत: विज्ञान की मूल संकल्पनाओं पर आधारित होती हैं। लेकिन एक विषय के रूप में, प्रौद्योगिकी की अपनी स्वायत्तता है और इसलिए इसे महज विज्ञान के विस्तार के रूप में देखा जाना ठीक नहीं है। कुछ भी कह लें प्रौद्योगिकी प्राचीनकालीन मानव सभ्यताओं का अभिन्न हिस्सा रही है। यही नहीं बल्कि प्राक्-इतिहास काल से ही। जबकि विज्ञान महज चार सौ साल से ही हमारे साथ जुड़ा है। आधुनिक तकनीकी के प्रभुत्व ने विश्व के अनेक पारंपरिक और स्थानीय तकनीकी ज्ञान को लगभग विनाश के कगार पर लाकर खड़ा कर दिया है।

वस्तुत: विज्ञान एक 'ओपेन-एंडेड' अन्वेषण है। इसमें निष्कर्षों या परिणामों के बारे में पहले से ही कुछ नहीं कहा जा सकता। जबकि प्रौद्योगिकी भी एक अन्वेषण ही है, लेकिन यहाँ लक्ष्य, पहले से ही निर्धारित होता है। बेशक, प्रौद्योगिकी विज्ञान की तरह ही रचनात्मक है, क्योंकि सिद्धांतत: इसमें भी एक ही लक्ष्य तक पहुँचने के कई रास्ते हो सकते हैं। सृजनात्मकता में निहित है- डिजाइनिंग के नए तरीके, योजना, लक्ष्य तक पहुँचने के रास्ते का खाका तैयार करना, साथ ही जाने-पहचाने वैज्ञानिक सिद्धांतों को नए तरीके से व्यवहार में लाना। तकनीकी समाधान, डिजाइन, सौंदर्यबोध, आर्थिक व अन्य व्यावहारिक तत्वों से उतने ही संप्रेरित रहते हैं जितने कि वैज्ञानिक सिद्धांतों से। लेकिन विज्ञान सार्वभौम है जबकि प्रौद्योगिकी लक्ष्य-आधारित और स्थानीय।

प्रगति की हमारी जो परिभाषा है उसमें विज्ञान और प्रौद्योगिकी की उन्नति की धारणा निहित है। उस उन्नति ने काम के नए (कल्पना से परे) क्षेत्रों को जन्म दिया है। साथ ही पारंपरिक क्षेत्रों मसलन, कृषि, उत्पादन, भवन निर्माण, यातायात और मनोरंजन की दुनिया को इस तरह बदल कर रख दिया है कि हम अचानक इन्हें पहचान भी नहीं पाएँगे। हम आज तेज़ी से बदल रही दुनिया का सामना कर रहे हैं जहाँ अत्यंत महत्त्वपूर्ण कौशल अपने-आपको ज़रूरत के अनुसार लगातार ढालते जा रहे हैं, और नए अवसरों के फ़ायदे उठा रहे हैं। विज्ञान शिक्षा के लिए किसी भी तरह की योजना में इन बातों का खयाल रखना अत्यंत ज़रूरी है।

1.3 विज्ञान की शिक्षा : वैधता के प्रकार

विज्ञान और प्रौद्योगिकी पर इस संक्षिप्त खुलासे के बाद अब हम मुख्य प्रश्न पर क्यों आते हैं: एक सच्ची विज्ञान-शिक्षा का हमारा दर्शन है? यहाँ तीन बातों पर

ध्यान देना महत्त्वपूर्ण हैं : सीखने वाला (बच्चा), वह वातावरण (भौतिक, जैविक व सामाजिक जीवन जिसमें विद्यार्थी हैं और विज्ञान भी है; एक सीखनेवाली वस्तु की तरह। हम विज्ञान की उस शिक्षा को अच्छी शिक्षा मानेंगे जो विद्यार्थी के प्रति, जीवन के प्रति व विज्ञान के प्रति ईमानदार हो। इस तरह का दृष्टिकोण हमें कुछ मूलभूत मापदंडों को तय करने की ओर अग्रसर करता है, जो विज्ञान की पाठ्यचर्या को वैधता/प्रामाणिकता प्रदान करें। वे निम्न हैं:

(अ) *संज्ञानात्मक वैधता*– यह माँग करती है कि पाठ्यचर्या की विषय-वस्तु, प्रक्रिया, भाषा और शिक्षण-कार्यकलाप उम्र/दर्ज़े के उपयुक्त हों और बच्चे की समझ से बाहर की चीज़ न हों।

(ब) *विषय-वस्तु वैधता*– यह माँग करती है कि पाठ्यचर्या उपयुक्त व वैज्ञानिक स्तर पर सही विषय-वस्तु को प्रस्तुत करे। यूँ तो बच्चे की समझ के स्तर के अनुसार विषय-वस्तु को सहज और सरल रूप में रखना ज़रूरी हो जाता है, लेकिन इस प्रक्रिया में यह ध्यान रखने की ज़रूरत है कि जो कुछ कहने की कोशिश की जा रही है, वह अर्थहीन व विरूपित होकर न रह जाए।

(स) *प्रक्रिया वैधता*– यह माँग करती है कि पाठ्यचर्या विद्यार्थी को वैज्ञानिक ज्ञान प्राप्त करने के तरीकों और उन तक पहुँचने की प्रक्रिया को सिखाए और बच्चे की सहज जिज्ञासा और रचनात्मकता को पोषित करे। प्रक्रिया वैधता एक महत्त्वपूर्ण मापदंड है, क्योंकि यह विज्ञान कैसे सीखा जाए, यह सिखाती है।

(द) *ऐतिहासिक वैधता*– यह माँग करती है कि विज्ञान-पाठ्यचर्या में ऐतिहासिक बोध को जगह दी जाए, ताकि विद्यार्थी समझ सकें कि विज्ञान की धारणाएँ समय के साथ कैसे विकसित हुईं। यह इस समझ को पैदा करेगी कि विज्ञान एक सामाजिक उद्यम है और किस प्रकार इसका विकास सामाजिक कारकों से प्रभावित होता है ।

(य) *परिवेशीय वैधता*– यह माँग करती है कि विज्ञान को विद्यार्थी के व्यापक परिवेश, स्थानीय और ग्लोबल, के संदर्भ में रखकर सिखाया जाए ताकि विद्यार्थी विज्ञान, प्रौद्योगिकी और समाज के बीच के जटिल संबंधों को समझ सके और रोज़गार की दुनिया में प्रवेश और टिकने के लिए आवश्यक ज्ञान और कौशल प्राप्त कर सकने में सक्षम हो सके।

(र) *नैतिक वैधता*– यह माँग करती है कि पाठ्यचर्या ईमानदारी, वस्तुनिष्ठता, सहयोग, आदि जैसे मूल्यों का संवर्द्धन करे और भय, पूर्वाग्रह एवं अंधविश्वास से मुक्त मानस तैयार करने में सहायक हो। साथ ही विद्यार्थी में जीवन व पर्यावरण की रक्षा के प्रति चेतना पैदा करे।

2. विज्ञान शिक्षा में शोध

लगभग चालीस वर्ष पहले ही विश्व भर में विज्ञान शिक्षा को शोध के स्वतंत्र विषय के रूप में मान्यता मिल गई थी। इस शोध के सरोकार विज्ञान और सामान्य शिक्षा के सरोकारों से अलग हैं। शुरू में इसके तरीके और तकनीक विज्ञान से ही लिए गए, लेकिन अब शोध की प्रकृति की ज़रूरत के अनुसार नयी विधियाँ विकसित की जा रही हैं।[1]

विज्ञान की पठन-पाठन की शैली को विकसित करने की ज़रूरत ही इस प्रकार के शोध के लिए प्रेरक का काम कर रही है। हम इस प्रश्न से शुरुआत करना चाहते हैं कि शिक्षण का कौन-सा तरीका अन्य तरीकों से बेहतर है ? सत्तर के दशक में एक प्रकार की नियंत्रित तुलनात्मक प्रयोग आधारित कक्षाएँ आयोजित की गईं। पढ़ाने की नयी सामग्रियाँ विकसित की गईं और लेक्चर (व्याख्यान) आधारित पढ़ाने के तरीके का कार्यकलाप-आधारित पढ़ाने के तरीके से तुलनात्मक अध्ययन किया

i'u iNuk

^^ok; gj txg g** ;g iR;d Ldyh cPpk lh[krk gA lHkor% fo|kFkh ; Hkh tkur g fd iFoh oQ okrkoj.k e dbZ xl g ;k ; fd pnek ij gok ugh gA ge [k'k gk ldr g fd og FkkMk foKku rk tkur g yfdu bl ckrpht ij è;ku n tk pkFkh d{kk e f'kf{kdk o fo|kfFk;k oQ chp gbA

f'kf{kdk % ^^D;k bl fxykl e gok g**

fo|kFkh (feydj) % gk!

og f'kf{kdk bl lkekU; dFku l lrq"V ugh Fkh fd ^^gok gj txg gA** mlu fo|kfFk;k l bl fopkj dk ,d ljy lh fLFkfr ij ykxw dju oQ fy, dgk vkj vpkud mlu ik;k fd mUgksu dN odfYid voèkkj.kk, r;kj dh FkhA

f'kf{kdk % vc fxykl dk mYVk j[k nA D;k vc Hkh bl e gok g\

(dN fo|kfFk;k u dgk ^^gk**] dN u ^^ugh** vkj dN nfoèkk e jgA)

fo|kFkh 1 % gok fxykl oQ ckgj vk xb!

fo|kFkh 2 % fxykl e gok Fkh gh ughA nljh d{kk e ,d f'kf{kdk u tyrh ekecÙkh oQ Åij ,d [kkyh fxykl j[kk Fkk vkj ekecÙkh c> xb Fkh!

fo|kfFk;k u ,d ,lh fØ;k dh Fkh tk mudh Lefr e nk o"k ckn Hkh Li"V Fkh yfdu de l de dN u rk bldk xyr fu"d"k gVk fn;k FkkA

oQN le>ku oQ ckn f'kf{kdk u fiQj fo|kFk;k l loky fd,A D;k bl cn vyekjh e gok g\ D;k feVVh e gok g\ ikuh e\ gekj 'kjhj oQ Hkhrj\ gekjh gfM;k oQ vnj\ iR;d loky u, fopkj ydj vk;k vkj mlI oQN xyriQgfe;k nj gk xbA ;g ikB d{kk oQ fy, Hkh ,d ln'k Fkk % fd lh Hkh dFku dk fo'y"k.k oQ fcuk Lohdkj u djkA loky iNA gk ldrk g lHkh mÙkj u fey yfdu vki bll lh[kx vfèkdA

गया इत्यादि। खास संदर्भों में इन तरीकों ने अच्छे परिणाम दिए लेकिन उन्हें हर जगह लागू करना कठिन था। कारण, कक्षाओं में वातावरण एक से नहीं होते, शिक्षकों व विद्यार्थियों के बीच भी अंतर होता है। दरअसल, पढ़ाना और सीखना, संदर्भ-आधारित व जटिल प्रक्रियाएँ हैं और इस जटिलता को जाने बिना पढ़ने-पढ़ाने की प्रक्रिया को समझना कठिन है और समझे बिना इसे नियंत्रित करना यानी दूसरी जगह के लिए भी उपयोगी बनाना संभव नहीं।[2,3]

इन शुरुआती अध्ययनों ने पड़ताल की नयी तरह की धाराओं को पनपने के लिए उपयुक्त वातावरण तैयार कर दिया। एक धारा ने पढ़ाने और सीखने के सामाजिक संदर्भ और विज्ञान के कार्यकलापों में संलग्न विद्यार्थी में होने वाले अंतर्वैयक्तिक-गत्यात्मकता को गंभीरता से लिया। इस धारा ने अपने तरीके समाज विज्ञान, भाषा विज्ञान और मानवविज्ञान से लिए। कक्षाओं के अवलोकन के लिए मिले नए उपकरण परिष्कृत स्तर के होते गए।[4,5] विज्ञान शिक्षण के प्रभावकारी होने के लिए

ज़रूरी है कि विद्यार्थी और शिक्षक के बीच अच्छा संबंध हो ताकि विद्यार्थी को प्रयोग की योजना बनाने, धारणाओं पर बहस करने और अवलोकनों को आलोचनापरक दृष्टिकोण से रिकॉर्ड व विश्लेषित करने का अवसर मिल सके। सामान्यत: हम जानते हैं कि विद्यार्थी और शिक्षक के बीच का अच्छा संबंध, उद्देश्य निर्धारित करने से लेकर निर्णय लेने की प्रक्रिया में विद्यार्थी की भागेदारी, स्पष्ट उम्मीदें और दायित्व बोध और सहयोग देने के अवसर आदि कुछ ऐसे नियामक हैं जो बेहतर परिणाम सामने लाते हैं।[6]

प्रयोग विज्ञान के प्रमाण चिह्न हैं और विज्ञान सीखने के लिए वे अनिवार्य भी हैं। भारत में स्कूलों के लिए कम लागत के प्रयोगों को विकसित करने की दिशा में महत्त्वपूर्ण प्रयास किए गए हैं। विज्ञान शिक्षा के शोधों में इस बात पर ध्यान दिया गया कि कैसे विद्यार्थी प्रयोग करते हुए या उन्हें होते हुए देखकर विज्ञान सीखते हैं। इंग्लैंड और अमेरिका या अन्य कई विकासशील देशों में और 1960 और 1970 के दशक में पाठ्यचर्या में ''इंक्वायरी'' या ''डिस्कवरी'' तरीकों के मूल्यांकनों के परिणामस्वरूप इस प्रकार के शोधों को प्रेरणा मिली।

इंक्वायरी पाठ्यचर्या, "इंडक्टिविस्ट" (आगमनात्मक) सिद्धांत पर आधारित हैं, जिसमें बिना किसी मत या पूर्वाग्रह के अवलोकनों से सीधे परिणामों पर पहुँचा जाता है।[(7,8)] 'इंक्वायरी' यानी जाँच का तरीका अपनाने के क्रम में कई स्तर की समस्याएँ–तार्किक, मनोवैज्ञानिक और 'लॉजिस्टिकल' सामने आईं।[(9,10,11)] एक समस्या थी– अवलोकन से परिणाम तक आने को समझना।[12] दरअसल विज्ञान में किसी सिद्धांत या परिकल्पना के आधार पर ही अवलोकन किया जाता है। जबकि कक्षा में प्रयोग शिक्षण द्वारा अथवा पाठ्यपुस्तक द्वारा प्रेरित होते हैं। विद्यार्थी या तो कही गई बातों का अनुसरण करते हैं या उन्हें कार्यरूप देते हुए देखते हैं, उन्हें यह भी बताया जाता है कि किस अवलोकन पर ध्यान दिया जाए और साथ ही उक्त अवलोकन के उपरांत क्या निष्कर्ष निकलकर सामने आएगा, यह भी पहले ही बता दिया जाता है यानी सब कुछ तयशुदा। उदाहरण के लिए एक प्रयोग को लें – मोमबत्ती जलाकर उसे गिलास से ढँक दिया जाता है। फिर प्रश्न पूछा जाता है– ''यह प्रयोग क्या दर्शाता है ?'' सामान्य उत्तर है – ''यह प्रयोग दर्शाता है कि हवा में ऑक्सीजन पाई जाती है।'' एकदम अप्रत्याशित निष्कर्ष लेकिन जिसे बिना किसी हिचक के कक्षाओं में स्वीकृति मिल जाती है।

यह स्पष्ट है कि प्रयोग–आधारित विज्ञान के अधिगम को प्रभावी बनाने के लिए शिक्षकों और विद्यार्थियों के पास जगह और समय होना चाहिए ताकि वे प्रयोगों की योजना बना सकें, विचार के बारे में बातचीत कर सकें और अवलोकनों को रिकार्ड तथा विश्लेषित कर सकें। अच्छे पढ़ाने के तरीके वही होते हैं जिसमें कई तरीकों का मिश्रण और पड़ताल का उपागम भी उनमें से एक हो।

विज्ञान सीखने के लिए भाषा में दक्षता ज़रूरी है। मनोवैज्ञानिकों ने भाषा और सोच के बीच के अंतरंग संबंध को दिखाया है। भाषा आसपास की चीजों को सहज नाम देना भर नहीं है, यह सिद्धांत निर्माण या धारणाओं के बनाने में भी औज़ार का काम करती है। यह अनुभवों के होने और उन्हें अभिव्यक्ति प्रदान करने का माध्यम भी है। विज्ञान सीखने में भाषा के योगदान पर हुए शोध ने रूपकों और उपमाओं को बेहतर तरीके से समझने और साथ ही वैज्ञानिक कार्यकलापों में अर्थ ढूँढ़ने के लिए अवसर प्रदान किया है।[(13,14)]

द्वितीय भाषा में विज्ञान पढ़ना एक और बोझ बन जाता है, खासकर प्राथमिक स्तर पर।[15] साथ ही पाठ्यपुस्तकों की भाषा में निरर्थक बोझिलता भी पाई गई है। पाठ्यपुस्तकों की भाषा को सहज बनाने पर कक्षा में विद्यार्थी–शिक्षक के बीच बेहतर संवाद स्थापित होते हुए पाया गया।[16]

शोध के उपरांत जो सबसे बड़ी बात सामने खुलकर आई, वह यह कि विद्यार्थी प्राकृतिक परिघटनाओं के बारे में जो धारणाएँ बनाते हैं या जिस प्रकार की तसवीर उनके मन में होती है, वह पाठ्यपुस्तक में या कक्षा में शिक्षक के द्वारा प्रस्तुत धारणा से एकदम भिन्न होती है। उनकी अपनी जो धारणाएँ होती हैं उन्हें एकदम से गलत कहकर खारिज़ नहीं किया जा सकता क्योंकि उन धारणाओं के पीछे उनका अपना तर्क होता है, अक्सर जिसकी बुनियाद

वे जो देखते हैं, अनुभव करते हैं, उस पर टिकी होती है।[17] पूरे संसार के शोधकर्ताओं ने यह पाया कि विद्यार्थी मानते हैं कि जो सामग्री बढ़ते हुए पौधों में होती है मिट्टी से आती है: इस प्रक्रिया में वायु की भूमिका बहुत कम है। वे मानते हैं कि जलने के दौरान पदार्थ नष्ट हो जाता है, एक समान गति को बनाए रखने के लिए बल की ज़रूरत होती है और बल्ब जलाने के लिए ''इलेक्ट्रिक करेंट" का उपयोग होता है।[18] इस तरह की बिना जाँची धारणाएँ काफ़ी मजबूती से जड़ जमाए होती हैं और अत्यन्त सावधानीपूर्वक विकसित शिक्षण-कार्यक्रमों से भी इनको बदलना मुश्किल साबित होता है।

चूँकि विज्ञान शिक्षा संदर्भ आधारित होती है, इसलिए ज़रूरी है कि शोध हमारे अपने परिवेश में होने चाहिए। भारत में किए गए अध्ययनों से ज्ञात हुआ है कि आदिवासी विद्यार्थियों को प्राकृतिक जगत का अच्छा ज्ञान होता है, जो उनकी जीवन-शैली में साफ़-साफ़ झलकता है। जबकि शहरी विद्यार्थी इसी ज्ञान को पाठ्यपुस्तकों व कहानियों के माध्यम से प्राप्त करते हैं।[19] स्वास्थ्य व रोगों के बारे में धारणाएँ भी संस्कृति व परिवेश से विकसित होती पाई गई हैं।[20]

विज्ञान शिक्षा के क्षेत्र में शोध ने संज्ञानात्मक विज्ञान के अंतरानुशासनिक क्षेत्र से काफी कुछ लिया है और साथ ही इस क्षेत्र को काफी कुछ दिया भी है।[21] संज्ञानात्मक ज्ञान ने मनोविज्ञान व ''आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस''(ए. आई.)से मॉडल और विधियाँ लीं। (आर्टिफिशियल इंटेलिजेंसी के पुराने उपागम) में ज्ञान को प्रतिज्ञप्तियों के रूप में देखा जाता है जिसे नोड्स व लिंक्स के नेटवर्क द्वारा प्रदर्शित किया जा सकता है यानी धारणाएँ व उनके बीच संबंध के रूप में। यह "उपागम" विशेषज्ञों व गैर-विशेषज्ञों के ज्ञान की रूपरेखाओं को पहचान कर उनके बीच में अंतर का अध्ययन करने का प्रयास करता है।

विशेषज्ञ, सामान्य व्यक्तियों की तुलना में याददाश्त की अच्छी क्षमता का प्रदर्शन करते हैं साथ ही समस्या-समाधान का भी, लेकिन अपने विषय में ही सीमित रहकर[22,23] विशेषज्ञता प्राय: उन तरीकों पर निर्भर होती है जो अपने ही क्षेत्र तक सीमित हो इसलिए विशेषज्ञ उन कौशलों या तरीकों से अपरिचित रह जाते हैं जो सामान्य होते हैं और विभिन्न क्षेत्रों के बीच रूपांतरित हो सकते हैं। विशेषज्ञ, अन्य लोगों की तुलना में किसी समस्या की गहराई तक जाते हैं, जबकि गैर-विशेषज्ञ (नए सीखने वाले) सतही तौर पर ही अवलोकन कर पाते हैं। जैसे कोई परिस्थिति जिसमें घिरनी और स्प्रिंग शामिल हों, ये इन्हें अलग-अलग कर देखते हैं जबकि विशेषज्ञ अपनी धारणाओं के बीच ज़्यादा से ज़्यादा संपर्क बनाने की क्षमता रखते हैं।

सीखने की प्रक्रिया यानी गैर-विशेषता से विशेषज्ञता की ओर की यात्रा की शुरुआत के लिए विद्यार्थी की धारणाओं व संकल्पनाओं को पुन: निर्मित करने की ज़रूरत होती है। इस तरह के सीखने की जाँच के लिए मूल्यांकन के नए तरीके विकसित किए गए हैं, मसलन कंसेप्ट मैप्स व सिमांटिक नेटवर्क्स।[24] आकलन के ऐसे गुणात्मक तरीके विशेषकर फ़ीडबैक लेने में उपयोगी होते हैं।

हाल के वर्षों में आकलन और मूल्यांकन को पूरी शिक्षा पद्धति में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हुए पाया गया है। अंतर्राष्ट्रीय प्रतियोगिता के माहौल में सरकारें ऐसी शैक्षणिक व्यवस्था विकसित करने का प्रयास कर रही हैं जो राष्ट्रीय प्राथमिकताओं की ओर ध्यान दे। इस प्रकार किसी भी शैक्षणिक नीति के निर्माण में व्यवस्थित परीक्षण लिए व्यापक तंत्र विकसित करना प्रमुख स्थान रखता है।[25]

3. राष्ट्रीय स्तर पर विज्ञान पाठ्यचर्या : एक संक्षिप्त इतिहास

1975 में स्कूली शिक्षा के लिए एक समान ढाँचा लागू किए जाने से पहले अधिकांश राज्यों और संघ-शासित राज्यों में कक्षा सात या आठ तक सामान्य शिक्षा के हिस्से के ही रूप में विज्ञान एक अनिवार्य विषय था। अधिकांश राज्यों में इस अवधि में इसे बतौर सामान्य विज्ञान ही पढ़ाया जाता था। माध्यमिक स्तर पर विज्ञान एक ऐच्छिक विषय था जो इस प्रकार के संयोग में लिया जा सकता था भौतिक विज्ञान और जीवविज्ञान अथवा भौतिकी, रसायन व जीवविज्ञान। पाठ्यक्रम व पाठ्यपुस्तकों के निर्धारण का

कार्य राज्यस्तरीय संस्थाएँ करती थीं। इसलिए विषय-वस्तु से लेकर शिक्षण की प्रक्रिया अलग-अलग राज्यों में अलग-अलग थी।

साठ के दशक में कक्षा एक से आठ तक विज्ञान पढ़ाए जाने का मुख्य उद्देश्य देश में विज्ञान शिक्षा का विकास था । कुछ पहचाने गए मुख्य उद्देश्य इस प्रकार थे:

- प्रकृति की शक्तियों और साधारण प्राकृतिक परिघटनाओं के साथ-साथ जैविक, भौतिक व द्रव्य जगत को जानना।
- वैज्ञानिक रुझान, मसलन वस्तुनिष्ठता, पड़ताल की क्षमता, खोजी प्रवृत्ति, विशुद्धता, यथार्थ आदि को परिपोषित करना। अपर्याप्त आँकड़ों के आधार पर जल्दबाजी में किसी निर्णय पर पहुँचने की प्रवृत्ति को छोड़ने के लिए आवश्यक मानस तैयार करना। और दूसरों के विचारों के प्रति सम्मानजनक रवैया अपनाने की प्रवृत्ति को विकसित करना।

1967-70 के दौरान यूनिसेफ के सहयोग से एन.सी.ई.आर. टी. द्वारा तैयार की गई अनुदेशन सामग्री प्राथमिक अवस्था में विज्ञान पढ़ाने के गतिविधि-आधारित तरीके पर आधारित थी। पढ़ाए जाने के लिए तैयार किए गए संसाधन जिसमें पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तकें (शीर्षक 'साइंस इज डूइंग') कार्यकलाप के लिए पुस्तिका, शिक्षकों के लिए निर्देशिका, विज्ञान किट और श्रव्य दृश्य सामग्री शामिल थे और इन्हें कुछ स्कूलों में प्रयोग करके तैयार किया गया था । कक्षा छः से आठ तक की पाठ्य सामग्री भी इसी प्रकार विकसित की गई।

प्रो. डी.एस. कोठारी की अध्यक्षता में गठित शिक्षा आयोग भारत में शिक्षा के प्रति अपने दर्शन की गहराई व व्यापकता में मील का पत्थर साबित हुआ।[26] इसने ही 1975 में 10+2+3 पैटर्न को लागू करने के लिए रास्ता तैयार किया। इस पैटर्न के लिए एक राष्ट्रीय स्तर की पाठ्यक्रम समिति ने एक नीति दस्तावेज़ बनाया जिसका शीर्षक '*द कॅरिकुलम फॅार द टेन ईयर स्कूल: ए फ्रेमवर्क*'[27] जिनका विज्ञान के पढ़ाए जाने और इसके पाठ्यक्रम व पाठ्यपुस्तकों पर सीधा प्रभाव पड़ा, वे थी:

- विज्ञान और गणित सहित सभी विषय सामान्य शिक्षा के तहत ही 10वीं तक अनिवार्य किए जाएँ।
- प्राथमिक स्तर पर विज्ञान व सामाजिक विज्ञान को एक ही विषय *पर्यावरण अध्ययन* के तहत पढ़ाया जाए।
- उच्च प्राथमिक स्तर पर उन दिनों प्रचलित आनुशासनिक उपागम अर्थात् विभाजित ढर्रे (डिसिप्लिनरी एप्रोच) के बजाय विज्ञान को समेकित (इंटीग्रेटेड) दृष्टिकोण से अपनाया जाए।
- उच्च प्राथमिक और माध्यमिक स्तर पर विज्ञान को एक संगठित विषय ही माना जाए अर्थात् अलग-अलग विद्वानो जैसे जीव, भौतिक और रसायन में न विभाजित किया जाए।

कक्षा 1 और 2 के लिए शिक्षकों की मार्गदर्शिका के सिवाय और कोई पाठ्यपुस्तक नहीं होनी चाहिए। कक्षा 3 से 5 तक विज्ञान और सामाजिक अध्ययन के लिए अलग-अलग पाठ्यपुस्तकें तैयार की गईं। पर्यावरण अध्ययन (विज्ञान) के लिए कुछ सामान्य विषय-वस्तु चुनी गई जो कक्षा एक से पाँच तक श्रेणीवृत्त क्रम में पढ़ाई जानी थी।

उच्च प्राथमिक स्तर पर एकीकृत (इंटीग्रेटेड) कोर्स के रूप में किए जा रहे विज्ञान शिक्षण प्रकृति व क्षेत्र के लिए निर्देशक तत्व निम्न थे:

- विज्ञान वास्तव में एक है, उसकी विभिन्न शाखाएँ अध्ययन की सुविधा के लिए किए गए अस्थायी विभाजन मात्र हैं-समेकित पाठ्यचर्या को विज्ञान की इस एकता वाली बात को ज़ाहिर करना चाहिए।
- वैज्ञानिक सिद्धांतों की पढ़ाई के लिए दैनंदिन जीवन के अनुभवों से जुड़ाव हो, पाठ्यचर्या में ऐसे प्रयास किए जाने चाहिए।
- विज्ञान पाठ्यचर्या को प्रक्रियाओं पर ज्यादा ज़ोर देना चाहिए न कि परिणामों पर।
- विज्ञान शिक्षण को कुछ खास मूल्यों के विकास की ओर अग्रसर होना चाहिए ।

- पाठ्यचर्या, सीखनेवालों को पर्याप्त अवसर मुहैया करवाए, ताकि वैज्ञानिक साक्षरता के आधारभूत स्तर को प्राप्त किया जाना संभव हो सके।
- पाठ्यचर्या शिक्षण के विभिन्न तरीके अपनाने के लिए शिक्षकों को पर्याप्त अवसर दें, जो विविध पृष्ठभूमि वालों की ज़रूरतों के अनुरूप हों।

उच्च प्राथमिक स्तर पर जो दृष्टिकोण अपनाया गया था, उसे माध्यमिक स्तर तक के लिए जारी रहने देने का निर्णय लिया गया। हाँ, इस स्तर पर संकाय जनित रुख अपनाने को ज़रूर कहा गया। 1977 में ईश्वरभाई पटेल की अध्यक्षता में गठित रिव्यू समिति ने सुझाव दिया कि माध्यमिक स्तर पर विज्ञान के दो बराबर कोर्स एकांतर (एक के बाद दूसरा) रूप में पढ़ाए जाएँ। समिति ने इन्हें नाम दिया कोर्स 'ए' और कोर्स 'बी' । कोर्स 'बी' को विज्ञान का 'कंपोजिट कोर्स' होना था, जिसे एक ही पाठ्यपुस्तक के माध्यम से पढ़ाया जाता। कोर्स 'ए' को संकाय जनित होना था जिसमें भौतिकी, रसायन और जीव विज्ञान को अलग-अलग पढ़ाया जाना था। लेकिन 1984-85 से इस प्रस्ताव के 'एकांतर कोर्स' वाले पक्ष को छोड़ दिया गया, क्योंकि इनमें से एक को दूसरे से बेहतर समझा गया और उसे ही जारी रखने का विचार किया गया।

1975 की रूपरेखा माध्यमिक स्तर तक ही सीमित रही। यहीं तक सामान्य मार्गदर्शक सिद्धांत एवं अनुदेशन के उद्देश्यों को रेखांकित कर पाई। उच्च माध्यमिक स्तर पर विज्ञान शिक्षण के उद्देश्य और तदनुसार पाठ्यक्रम व पाठ्यपुस्तक विकसित करने की जिम्मेदारी पाठ्यचर्या निर्माताओं पर छोड़ दी गई।

दूसरी महत्त्वपूर्ण पहलकदमी थी राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एन.पी.ई-1986) जिसने प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या- एक फ्रेमवर्क (एन.सी.एफ. -1988)[28], के लिए मार्ग प्रशस्त किया। पहले की तरह ही इसने भी प्राथमिक स्तर पर विज्ञान शिक्षण को 'पर्यावरण अध्ययन' के तहत ही पढ़ाए जाने का सुझाव दिया। 'पर्यावरण अध्ययन' के लिए इसने निर्देश दिया था कि इसकी दो इकाइयाँ हों– विज्ञान और समाज विज्ञान। एन.सी.एफ.-88 द्वारा सुझाए गए निर्देशों को बाद में एक पुस्तिका जिसका शीर्षक था *प्रथम दस वर्षों तक की शिक्षा: उच्च प्राथमिक व माध्यमिक स्तर की कक्षाओं के लिए* में व्यापक रूप से समझाया गया। विज्ञान शिक्षा के जिन सात मुख्य आयामों के बारे में इसमें बात की गई वे सेक्शन 1.3 में बताए गए 'वैलिडिटी' के मानकों से मेल खाते हैं। माध्यमिक स्तर पर विज्ञान की पढ़ाई एक ही विषय के रूप में होनी चाहिए न कि इसे विभिन्न विषयों में बाँटकर जैसाकि उस समय चलन था, इसे पहली बार गौर से समझा गया। इसे इस स्तर पर विज्ञान पाठ्यचर्या का विशिष्ट लक्षण कहा जा सकता है।

विद्यालयी शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2000[29] के विज्ञान शिक्षण के बारे में सुझाव थे:

- पर्यावरण अध्ययन को प्राथमिक स्तर पर एक ही विषय की तरह पढ़ाया जाए, पर्यावरण अध्ययन (विज्ञान) और पर्यावरण अध्ययन (सामजिक विज्ञान) में बाँटे बिना।
- उच्च प्राथमिक व माध्यमिक स्तरों पर 'विज्ञान' के बदले 'विज्ञान और प्रौद्योगिकी' पढ़ाया जाए ताकि विद्यार्थी वैज्ञानिक व तकनीकी जनित साक्षरता के विभिन्न आयामों से परिचित हो सकें।
- उच्च माध्यमिक स्तर पर विज्ञान को अलग-अलग संकायों: भौतिकी, रसायन और जीव विज्ञान के रूप में पढ़ाए जाने को जारी रखा जाए।

इस तरह हम देखते हैं कि पिछले चालीस-पचास वर्षों के दौरान भारत में विज्ञान-पाठ्यचर्या ने उपागम व विषय-वस्तु दोनों के स्तर पर कई रूप बदले हैं। प्राथमिक स्तर पर विज्ञान की पढ़ाई पर्यावरण अध्ययन के रूप में की जाए, सर्वप्रथम ऐसा प्रस्तावित किया गया और बाद में पर्यावरण अध्ययन को समाकलित रूप में दिया गया। उच्च प्राथमिक स्तर पर संकाय जनित विभाजनों के बदले एकीकृत रूप में विज्ञान पढ़ाने की बात हुई और बाद में

विज्ञान व प्रौद्योगिकी को एक साथ रखकर पढ़ाने की। माध्यमिक स्तर पर भी इसी तरह के परिवर्तन होते पाए गए।

राज्य/संघशासित प्रदेश स्तर पर पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकों के विकास के कार्यक्रम राष्ट्रीय स्तर पर होने वाले पाठ्यचर्या सुधार के अभ्यासों का अनुसरण करते हैं। एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा राष्ट्रीय स्तर पर विकसित की गई पाठ्य सामग्री का कई राज्यों ने या तो पूर्ण रूप से बिना बदलाव के अपनाया, या फिर उनमें राज्य की आवश्यकता अनुसार बदलाव के साथ। कुछ अन्य ने अपनी पाठ्यचर्चाएँ प्रक्रियाएँ विकसित कीं, तो कई ने अपना पाठ्यक्रम विकसित किया। कुछ राज्यों में माध्यमिक स्तर पर विज्ञान को एक साथ भौतिक विज्ञान और जीव विज्ञान या जीवन विज्ञान के रूप में पढ़ाया जाता है तो कई राज्यों में इसे एक साथ भौतिकी, रसायन व जीव विज्ञान के रूप में। विविधता के बावजूद विज्ञान–शिक्षण के तहत विज्ञान को अनिवार्य विषय के रूप में पढ़ाना और इसमें पर्यावरण के प्रति ज़्यादा गंभीरता सभी जगह पाई गई।

संक्षेप में, बदलती हुई सामाजिक ज़रूरतों और वैश्विक स्तर पर हो रहे परिवर्तनों को ध्यान में रखते हुए भारत में विज्ञान–पाठ्यचर्या में परिवर्तन किए जाते रहे हैं। लेकिन इनका प्रभाव विज्ञान शिक्षण की गुणवत्ता पर नहीं दिखाई दिया। इसका कारण रहा कार्यान्वयन के हर स्तर पर उन मुद्दों को गंभीरता से न लिया जाना जिन पर हम इस आधार पत्र में लगातार चर्चा कर रहे हैं।

4. नवाचारी कार्यक्रमों और हस्तक्षेपों से सबक

विभिन्न समितियों और आयोगों के द्वारा सुझाए गए उपायों और उनके वास्तविक कार्यान्वयन के बीच के फ़ासले को देखते हुए कुछ लोगों और स्वैच्छिक संगठनों ने अपनी तरफ़ से प्रयास किए। इनमें अधिकांश वैज्ञानिक और अकादमिक जगत के लोग थे। इन्होंने शिक्षकों और शिक्षक संगठनों के साथ मिलकर गतिविधि–आधारित विज्ञान पाठ्यचर्या को विकसित करने का प्रयास किया। इन प्रयासों को एन.सी.ई.आर.टी और यू.जी.सी. जैसे सरकारी संगठनों ने भी प्रोत्साहन और सहयोग दिया। इनसे जो बातें सामने निकल कर आईं उनमें से सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह लगी कि किसी भी तरह के परिवर्तन के लिए मूल्यांकन के पारंपरिक तरीके में सुधार की ज़रूरत है। साथ ही विज्ञान शिक्षण में सुधार के लिए ज़रूरी है कि यह उन सभी मुद्दों को समझने की और समेटने की कोशिश करें जो शिक्षण व सीखने की प्रक्रिया में मौजूद होते हैं।

इन प्रयासों में तीन मुख्य समस्याओं की ओर ध्यान देने की कोशिश की गई। पहला, पढ़ाई जाने वाली विषयवस्तु में – अवधारणाओं और तथ्यों की मात्रा का बहुत ज़्यादा होना; दूसरा, बच्चे की समझ का स्तर और उसे पढ़ाई जा रही विषयवस्तु के बीच फ़ासला; और तीसरा, कक्षा में पढ़ाए जाने वाले तरीकों में खामियाँ। यह पाया गया कि रटने पर ज़्यादा ज़ोर दिया जाता है और अवलोकन, डिजाइन, विश्लेषण और प्रक्रियाजनित कुशलता की तरफ़ न के बराबर ध्यान दिया जाता है। सुधार नहीं होने के कई कारणों में सबसे बड़ा कारण जो पाया गया वह यह कि लोगों का समूचा ध्यान परीक्षा में विद्यार्थी कितना अंक लाता है, इसकी ओर लगा रहता है।

स्कूली शिक्षा में सुधार लाने के लिए, जिसमें विज्ञान शिक्षण भी शामिल है, 1980 से ही सरकार और दूसरी संस्थाओं के द्वारा कई तरह के नवाचारी कार्यक्रम किए गए। इसका एक उदाहरण जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम (डी.पी.ई.पी.) है, जिसका विस्तृत रूप सर्व शिक्षा अभियान के रूप में हमारे सामने है। ये हस्तक्षेप देश के कुछ भागों में बहुत दिनों तक जारी रहे। इनमें से अधिकांश में विज्ञान शिक्षण सामान्य शिक्षा के सार्वभौमीकरण का भाग रहा। टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ़ फंडामेंटल रिसर्च (टी.आई.एफ.आर) के होमी भाभा विज्ञान शिक्षण केंद्र (एच.बी.सी.एस.ई.) की तरफ़ से एक अलग ही तरह का प्रयास किया गया। इसमें सूक्ष्म स्तर पर क्रमिक हस्तक्षेप किए गए और विज्ञान को लोकप्रिय बनाने एवं प्रतिभा को विकसित करने हेतु कई तरह की सामग्री एवं तरीकों का विकास एवं उन पर शोध किया गया।

होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम (होशंगाबाद साइंस

टीचिंग प्रोग्राम–एच.एस.टी.पी.) सूक्ष्म स्तर पर हस्तक्षेप करने वाले कार्यक्रमों में से एक है जो बाद में मध्य प्रदेश सरकार द्वारा 1978 में अपनाया गया और राज्य भर के एक हज़ार से ऊपर स्कूलों में लागू किया गया। इसके द्वारा किए गए कुछ नए संरचनात्मक परिवर्तन (उदाहरण के लिए संयुक्त संसाधन केंद्र) बड़े स्तर की योजनाओं में भी अपनाए गए। इसका 30 वर्ष का इतिहास हमें व्यापक पाठ्यचर्या की महत्ता के प्रति प्रेरित करता है जिसमें, पाठ्यपुस्तक, शिक्षकों का प्रशिक्षण, स्कूलों द्वारा क्रियान्वयन पर कड़ी निगाह, बच्चों और शिक्षकों से प्रतिक्रियाएँ जानना और दूसरे तरीके जो शिक्षकों के लिए सहायक हों और परीक्षा के लिए भी महत्त्वपूर्ण हों, शामिल हैं। एच.एस.टी.पी. के फलस्वरूप बनी *एकलव्य संस्था* एक गैर सरकारी संगठन (एन.जी.ओ) है जो स्कूली शिक्षा में क्रांति लाने की घोषणा के साथ जन्मी। इसके प्राथमिक स्तर के कार्यक्रम 'प्रशिका' ने प्राथमिक स्तर के पाठ्यचर्या निर्माण कार्यक्रम के लिए कई महत्त्वपूर्ण निवेश दिए।

डी.पी.ई.पी. केंद्रीय सरकार द्वारा शुरू किया गया कार्यक्रम था। प्राथमिक स्कूलों के लिए शुरू किए गए इस कार्यक्रम को बहुपक्षीय वित्तीय सहायता केंद्र सरकार मुहैया कराती थी और लागू करने का काम राज्य सरकारों का था। वर्ष 1994 में यह 7 राज्यों– असम, हरियाणा, कर्नाटक, केरल, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र और तमिलनाडु[30] के 42 ज़िलों में फैल चुका था, बाद में डी.पी.ई.पी. विस्तार पाकर 280 ज़िलों तक पहुँच गया। और अब इसके अगले स्वरूप सर्व शिक्षा अभियान को देश के सभी 593 ज़िलों तक पहुँचाने के उद्देश्य पर कार्य किया जा रहा है।[31] राजस्थान में *लोक जुंबिश* कार्यक्रम शुरू किया गया जो 8वीं कक्षा तक के बच्चों के लिए था, लेकिन इसकी देख-रेख की जिम्मेदारी एक स्वायत्त संस्था (लोक जुंबिश परिषद्) के हाथों में थी, जो इसी काम के लिए स्थापित की गई थी। बाद में 'लोक जुंबिश' कार्यक्रम को 'सर्व शिक्षा अभियान' के तहत ही समायोजित कर दिया गया।

इन सभी कार्यक्रमों में सीखने वाले को ध्यान में रखते हुए कार्यकलाप आधारित शिक्षण-पद्धति विकसित की गई, जिसमें बच्चे खुद अपने अनुभवों से धारणाएँ बनाने में सक्षम हो सकें और साथ ही अपने परिवेश से भी सीखने की क्षमता हासिल कर सकें। वृहत्तर स्तर के इन हस्तक्षेपों के स्थानीय स्तर पर हुए मूल्यांकनों से निम्नलिखित बातें उभरकर सामने आईं:

- पैमाने और तीव्रता की अपनी जीवंतता होती है जो परिवर्तन के लिए वातावरण तैयार करती है। कोई भी एक नया प्रयोग तरंग की भाँति फैल जाता है और शिक्षण के सभी पहलुओं को प्रभावित करता है। कक्षा में पढ़ाने के तरीके में बदलाव, पाठ्यपुस्तक लेखन, शिक्षकों के प्रशिक्षण और पूरे अकादमिक तंत्र को प्रभावित कर सकता है। इसलिए किसी भी तरह के नए प्रयास को समग्रतावादी दृष्टिकोण से देखना ज़रूरी है न कि आंशिक। और इसे लागू करने के लिए 'मिशन-मोड' की ज़रूरत है।
- 'मिशन-मोड' के लिए ज़रूरी है कि वह उन बातों को उभार कर सामने लाए जिनसे लोग खुद को भावनात्मक और बौद्धिक स्तर पर जोड़ सकें, महसूस कर सकें और तादात्म्य स्थापित कर सकें। इसके साधनों के रूप में 'विज्ञान कारवाँ' और 'विज्ञान मेला' जैसे कार्यक्रम भी अपनाए जा सकते हैं जिसमें लोग प्रयोगों द्वारा सांस्कृतिक कार्यक्रमों द्वारा जन रैलियों और माता-पिता तथा शिक्षिकों के साथ बैठकों में विज्ञान सीखने के विचार पर चर्चा कर सकते हैं। इस प्रकार अभिभावकों और अन्य लोगों से नवाचार के प्रति रुचि जाग्रत होती है।
- शिक्षकों का प्रोत्साहन एक महत्त्वपूर्ण पहलू है। प्रोत्साहन का मतलब है शिक्षकों को नए तरीके अपनाने के लिए प्रेरित करना, उनके आत्मविश्वास को बढ़ावा देना और लागू किए जा रहे नए प्रयोग के सभी स्तरों पर उनकी भागीदारी सुनिश्चित करना ताकि उनमें खुद की स्थिति और महत्ता के बोध जाग सकें। यह शिक्षकों की बैठकों, शिक्षक-प्रशिक्षण, दूसरे स्कूलों का मुआयना आदि के द्वारा किया जाता है।

- शिक्षक जब सेवा में आ चुका हो तब उसके प्रशिक्षण के लिए दो तरह के मॉडल संभव हैं। पहला, कैसकैड मॉडल– इसमें उन लोगों को प्रशिक्षित किया जाता है जो शिक्षकों को प्रशिक्षित करते हैं। दूसरा है व्यापक केंद्रीय प्रशिक्षण। प्रशिक्षण का अहम पक्ष यह हो कि शिक्षकों की इस धारणा को बदला जा सके कि उन्हें सभी चीजों का ज्ञान होना चाहिए। उन्हें यह अहसास कराना ज़रूरी है कि अच्छा पढ़ाने के लिए सब कुछ जानना ज़रूरी नहीं होता है। उन्हें बच्चों को सीखने के लिए बढ़ावा देने की आवश्यकता है न कि हर क्षेत्र में अपना ज्ञान बढ़ाने के।
- एक और पक्ष जो महत्त्वपूर्ण है वह यह कि शिक्षक आज़ादी से सोचना शुरू करें, विषयवस्तु संबंधित ज्ञान को बढ़ाएँ और पढ़ाने में प्रभावकारी तरीका अपनाएँ।[32] इस लक्ष्य को कैसकैड मॉडल से प्राप्त करना कठिन है, लेकिन प्रशिक्षण में सामूहिक तौर पर सीख रहे शिक्षकों के बीच परस्पर संवाद और परिवर्तन के लिए आवश्यक माहौल उत्पन्न हो ही जाता है जो आगे सीखने को बढ़ावा देता है।
- इन कार्यक्रमों ने ऐसे संगठनों का विकास किया जो क्षेत्रीय स्तर पर अंतर्संबंध स्थापित कर सकें, उदाहरण के लिए ब्लॉक रिसोर्स सेंटर (बी.आर.सी.) जो कि खंड स्तर पर और क्लस्टर रिसोर्स सेंटर (सी.आर.सी.)जो कि स्कूलों के समूह के स्तर पर होता है। एक दूसरे प्रकार का संगठन संगम केंद्र के रूप में जिसमें हाई स्कूल, इससे जुड़े हुए माध्यमिक स्कूल, और माध्यमिक स्कूल से जुड़े हुए प्राथमिक स्कूल को मिलाकर विकसित किया गया। इन्होंने विकेंद्रीकरण के लिए रास्ता तैयार किया और एक ढाँचा भी मुहैया कराया ताकि शिक्षकों के बीच लगातार बैठकें हो सकें, पेशे में रहते हुए शिक्षकों को प्रशिक्षित किया जा सके इत्यादि। यह अकादमिक सहायता व्यवस्था थी जिसने शिक्षकों के बीच ज़्यादा से ज़्यादा संवाद और विचारों के आदान-प्रदान के लिए अवसर प्रदान किए।
- सबसे बड़ा प्रभाव पड़ता है स्कूल के बाहर के रचनात्मक कार्यक्रमों से, मसलन विज्ञान मेला, विज्ञान क्लब और पुस्तकालय। क्षेत्र में जाकर किए गए अध्ययनों से पता चलता है कि कक्षाओं में विज्ञान का शिक्षण सुधारा नहीं जा सकता जब तक कि बाहर भी इस तरह के रचनात्मक कार्यक्रम न हों।
- मोटे तौर पर इन सभी कार्यक्रमों ने कक्षाओं को ज़्यादा भागीदारी की ओर ले जाने में सफलता प्राप्त की। शिक्षण को एकालाप (वनवे स्ट्रीट) के रूप में देखा जाना खत्म हुआ। शिक्षकों का सत्तावादी रवैया खत्म हुआ और विद्यार्थियों को कक्षा में ज़्यादा से ज़्यादा बोलने और शिक्षण की प्रक्रिया में भाग लेने का अवसर प्राप्त हुआ। वे ज़्यादा से ज़्यादा प्रश्न पूछने लगे और सामूहिक गतिविधियों में खुलकर भाग लेने लगे।

संक्षेप में, इन प्रयासों और हस्तक्षेपों ने दिखलाया कि शिक्षा व्यवस्था को बदलना तभी संभव है जब इन नए प्रयासों को ठीक से सोच समझ कर लागू किया जाए। इसमें ज़रूरी है कि लोग व्यवस्था द्वारा दिए जाने वाले हल के भरोसे बैठे नहीं रहें बल्कि परिवर्तन के लिए माँग करें और उसे वास्तव में अमली जामा पहनाने के लिए दबाव डालें। विकेंद्रीकरण ने पाठ्यचर्या में स्थानीय महत्ता को जगह दी। केंद्रीकृत ढाँचा भी दिशानिर्देश देने के स्तर पर उपयोगी है। इन सुझावों को अब शोध और विकास कार्यक्रमों से आने वाले निवेशों पर आधारित किया जा सकता है।

5. विज्ञान शिक्षा के उद्देश्य और विभिन्न स्तरों पर पाठ्यचर्या का संगठन

5.1 विज्ञान शिक्षा के उद्देश्य

विज्ञान शिक्षा के उद्देश्य सीधे इसकी छह वैधताओं

के मापदंडों से जुड़े हुए हैं। (विज्ञान शिक्षा: वैधता के प्रकार देखें) ये वैधताएँ हैं: संज्ञानात्मक, विषयवस्तु, प्रक्रिया, ऐतिहासिक, पर्यावरणीय एवं नैतिक। संक्षेप में, विज्ञान शिक्षा विद्यार्थी को इस लायक बना दे ताकि वह:

- अपने संज्ञानात्मक स्तर के अनुरूप विज्ञान के तथ्यों व धारणाओं को समझने और इसे प्रयुक्त करने के काबिल हो जाए।
- उन तरीकों और प्रक्रियाओं को समझ सके जिनसे वैज्ञानिक ज्ञान का सृजन किया जा सके तथा इसका वैधीकरण भी किया जा सके।
- विज्ञान के ऐतिहासिक एवं विकास संबधी परिप्रेक्ष्यों को समझ सके। साथ ही विज्ञान को एक सामाजिक उद्यम की तरह देख सके।
- खुद को स्थानीय तथा वैश्विक परिवेश (प्रकृति, लोग, वस्तुएँ) से जोड़ सके और विज्ञान, प्रौद्योगिकी और समाज के बीच की अंत:क्रिया को व तद्जन्य उपजे मुद्दों को समझ सके।
- रोज़गार की दुनिया में पैर टिका पाने के लिए आवश्यक सैद्धांतिक और व्यावहारिक कुशलता हासिल कर सके।
- अपनी स्वाभाविक जिज्ञासा, सौंदर्यबोध और रचनात्मकता से विज्ञान व प्रौद्योगिकी को परिभाषित कर सके।
- ईमानदारी, सत्यनिष्ठा, सहयोग, जीवन के प्रति सरोकार और पर्यावरण सुरक्षा जैसे मूल्यों की महत्ता समझ सके।
- 'वैज्ञानिक स्वभाव' विकसित करना सीख जाए जिससे हमारा मतलब है–वस्तुनिष्ठता, आलोचनात्मक सोच और भय एवं अंधविश्वास से मुक्ति।

5.2 विभिन्न स्तरों पर पाठ्यचर्या: लक्ष्य, विषयवस्तु, शिक्षणशास्त्र और आकलन

तय किए गए सामान्य उद्देश्यों के अनुसार लक्ष्य, विषयवस्तु, शिक्षणशास्त्र और आकलन स्तर सापेक्ष होंगे। विज्ञान शिक्षा के क्षेत्र में किए गए शोधों, राष्ट्रीय और राज्य स्तर पर पाठ्यचर्या के विगत कुछ दशकों के अनुभवों और स्वैच्छिक संगठनों के विभिन्न हस्तक्षेपकारी कार्यक्रमों ने स्कूली पाठ्यचर्या के कार्यक्षेत्र और क्रमिक परिवर्तन पर काफ़ी प्रकाश डाला है। विज्ञान पाठ्यचर्या में वर्गीकरण के बारे में निर्णय लेते समय इस बात को ध्यान में रखना चाहिए कि दसवीं कक्षा तक विज्ञान को अनिवार्य विषय के रूप में पढ़ने वालों में से अधिकांश विद्यार्थी वैज्ञानिक या तकनीकी का पेशा अपनाने नहीं जाएँगे; तथापि उन्हें वैज्ञानिक रूप से साक्षर होना ज़रूरी है क्योंकि आज समाज द्वारा उठाए गए कई सामाजिक, राजनैतिक और नैतिक (मूल्यगत) मुद्दे विज्ञान और प्रौद्योगिकी के इर्द-गिर्द ही घूमते हैं। इसलिए दसवीं तक की विज्ञान की पाठ्यचर्या को मुख्यत: विद्यार्थियों में विज्ञान, तकनीकी और समाज के अंतर्संबंधों के प्रति जागरूकता लाने की ओर उन्मुख होना चाहिए। साथ ही पर्यावरण व स्वास्थ्य संबंधी समस्याओं के प्रति उन्हें चेताते हुए उनमें व्यावहारिक कुशलता भी विकसित की जानी चाहिए ताकि काम की दुनिया में वे टिक सकें। ज़ोर केवल विषय-वस्तु पर नहीं होना चाहिए, बल्कि विज्ञान सीखने के तरीके को भी प्रकाश में लाना चाहिए। विज्ञान के प्रक्रिया कौशल अर्थात् विज्ञान सीखने की विधियाँ व तकनीकी ज़्यादा ज़रूरी है। यह ज़रूरी है क्योंकि ये ज़्यादा स्थायी होता है और विद्यार्थियों को विज्ञान व तकनीकी की लगातार तेज़ी से बदलती दुनिया से जूझने में कारगर सिद्ध होते हैं। इसका मतलब यह नहीं कि विषयवस्तु को नज़रअंदाज़ कर दिया जाए। तथ्य, नियम, सिद्धांत और विभिन्न परिघटनाओं को समझने के लिए उनका उपयोग विज्ञान की नब्ज़ है और इसलिए विज्ञान-पाठ्यचर्या को विद्यार्थियों को इन सभी बातों से जोड़ने वाला होना चाहिए। तथापि दसवीं तक विज्ञान को एक ही संयुक्त विषय के रूप में पढ़ाना चाहिए न कि अलग-अलग संकायों - भौतिकी, रसायन और जीव-विज्ञान में बाँटकर। उच्च माध्यमिक स्तर पर ज़रूर अलग-अलग संकाय के रूप में ज़्यादा गहराई तक जाकर तथा उस अवस्था के उपयुक्त उत्साह के साथ पढ़ने की ज़रूरत है।

5.2.1 प्राथमिक स्तर (कक्षा 1 से कक्षा 5 तक)

इस स्तर पर विज्ञान शिक्षण रोचक होना चाहिए। साथ ही बच्चे को अपने परिवेश से घुलने-मिलने और इसके बारे में बातें करने का पर्याप्त अवसर देना चाहिए।

इस स्तर पर मुख्य उद्देश्य हैं, बच्चे में परिवेश के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न करना और इसे खोजी एवं हाथ से करने वाले कार्यकलाप में संलग्न होने हेतु प्रोत्साहित करना। इससे बच्चे में मूलभूत संज्ञानात्मक और मन:प्रेरक कुशलताएँ विकसित होती हैं। यह कौशल भाषा, अवलोकन, रिकार्डिंग, वर्गीकरण, भेदीकरण, निष्कर्ष निकालने, चित्रांकन व्याख्या, डिजाइन, निर्माण, अनुमान लगाना तथा मापन से विकसित होते हैं। पाठ्यचर्या को बच्चे में सफाई, ईमानदारी, सहयोग, जीवन और परिवेश के प्रति गंभीर रुख जैसे मूल्य भी विकसित करने में मदद करनी चाहिए। इस स्तर पर बच्चे अपनी भाषिक क्षमताओं को विकसित कर रहे होते हैं अर्थात् बोलना, पढ़ना और लिखना सीख रहे होते हैं, जो विचारों के अभिव्यक्ति देने और परिवेश के अवलोकन करने के लिए ज़रूरी होता है। इसलिए इस स्तर पर भाषा के विकास पर ज़ोर देना चाहिए, ऐसा विज्ञान को पढ़ाते हुए और पढ़ाने के लिए करना चाहिए। मातृभाषा के माध्यम से सीखना बहुत स्वाभाविक है, इसलिए मातृभाषा का प्रयोग करना चाहिए लेकिन उसमें भी ध्यान रखना चाहिए कि बच्चे पर विज्ञान के उन शब्दों का बोझ न पड़े जिन्हें वे समझ ही न पाएँ।

इस स्तर पर विषयवस्तु कैसी हो इसके लिए सबसे अच्छा मापदंड खुद बच्चा ही है। बच्चे के लिए महत्त्वपूर्ण, अर्थपूर्ण और उसके अभिरुचि की विषयवस्तु हो तभी बच्चा इसे पढ़ने के लिए प्रेरित होगा। साथ ही अच्छा यह है कि बातचीत उसके आस-पास के जीव-जगत की हो न कि औपचारिक अमूर्त जगत के बारे में। विज्ञान और समाज विज्ञान को एक साथ पर्यावरण विज्ञान के रूप में पढ़ाने की वर्तमान पद्धति को बरकरार रखा जाए। साथ ही स्वास्थ्य शिक्षा को इसका महत्त्वपूर्ण अवयव बना कर इसे मजबूती प्रदान की जाए। इसलिए बच्चे के लिए विज्ञान शिक्षण पर पाठ्यचर्या निर्मित करते समय विज्ञान व समाज विज्ञान दोनों ही क्षेत्रों के लोग सभी स्तरों पर साथ-साथ रहें तो उचित लक्ष्य प्राप्त हो सकता है।

शिक्षण मुख्यत: कार्यकलाप-आधारित होना चाहिए। कक्षा के बाहर व भीतर दोनों ही जगह पढ़ाया जाना चाहिए, लेकिन शिक्षण मुख्यत: गतिविधिपरक ही होना चाहिए। साथ ही दूसरे तरीकों मसलन, कहानियों, कविताओं, नाटकों और अन्य सामूहिक गतिविधियों का भी सहारा लिया जा सकता है। प्राथमिक स्कूल के बच्चे, खासकर ग्रामीण व दूरदूराज़ स्थित स्कूलों में, प्राकृतिक ज़गत से सीधे संपर्क में होने की वज़ह से अच्छा-खासा अनुभव लिए होते हैं। पाठ्यचर्या को उनकी इस संपदा को परिपोषित करने वाली व बनाए रखने वाली होना ज़रूरी है। उन्हें बिना किसी निर्देश के अन्वेषण करने, पैटर्नों को देखने, तुलनाएँ करने और संबंधों के जाल को समझने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। इससे बच्चे ध्वनि, रंग, दृश्य, आकार आदि की समानताओं व विविधताओं को पहचानना सीख सकेंगे। पर्यावरण और इससे जुड़े मूल्यों के प्रति दायित्वबोध उत्पन्न करने व उसे फलित-पोषित करने वाले कार्यकलाप में उन्हें सीधे संलग्न करना चाहिए-मसलन, बीज बोना, पेड़ लगाना, पेड़ों की रक्षा करना, पानी को व्यर्थ बर्बाद नहीं करना आदि। इसी तरह स्वास्थ्य, स्वास्थ्य-विज्ञान और सामाजिक-व्यवहार के बारे में पाठ्यपुस्तक का जाप न करके, उदाहरणों अथवा वास्तविक कार्यकलापों के माध्यम से पढ़ाया जाना चाहिए। कक्षा में वातावरण ऐसा नहीं होना चाहिए जो बच्चे को अच्छा ही करना है जैसे दवाब में डाले, बल्कि उसे अपनी गति से बढ़ने का मौका मिलना चाहिए। साथ ही बच्चों में आपस में और बच्चों और शिक्षकों के बीच खुले संवाद की छूट होनी चाहिए।

पर्यावरण अध्ययन के लिए कक्षा एक और कक्षा दो में इन दिनों कोई भी पाठ्यपुस्तक नहीं देने के प्रावधान को जारी रखना चाहिए। पठन-पाठन के लिए किसी संरचना को लादना ज़रूरी नहीं है। संरचना से हमारा मतलब है कि पहले से ही तय करके पढ़ाया जाना। हम यह चाहते हैं कि विषय-वस्तु व उससे संबंधित कार्यकलाप के बीच कोई कठोर क्रम नहीं रहना चाहिए। शिक्षक/शिक्षिका इन दोनों के लिए उचित क्रम खुद तय करें। औपचारिक

छात्र कौन सा जीव विज्ञान जानते हैं ?

''ये छात्र विज्ञान नहीं समझते, ये वंचित पृष्ठभूमि से हैं! अक्सर ग्रामीण व आदिवासी पृष्ठभूमि से आए बच्चों के बारे में हम इस प्रकार के मत सुनते हैं। फिर भी देखें कि ये बच्चे अपने दैनिक अनुभवों से क्या-क्या जानते हैं।

जनाबाई सहयाद्रि पर्वत शृंखला में स्थित एक छोटे से गाँव में रहती है। वह अपने माता-पिता की चावल व अरहर के खेतों में मदद करती है। कभी-कभी वह अपने भाई के साथ बकरियों को चराने भी ले जाती है। उसने अपनी छोटी बहन के पालन-पोषण में भी मदद की है। आजकल वह हर रोज आठ किलोमीटर पैदल चल कर निकट के माध्यमिक स्कूल में जाती है। उसका अपने प्राकृतिक वातावरण से घनिष्ठ संबंध है। उसने अनेक पौधों को भोजन, दवाई, ईंधन, रँगने के पदार्थ के रूप में प्रयोग किया है। उसने तरह-तरह के पौधों के विभिन्न अंगों का अवलोकन किया है जो घर में धार्मिक अनुष्ठानों एवं त्योहार मनाने के दौरान प्रयोग किए जाते हैं। वह वृक्षों के सूक्ष्मतम अंतर को जानती है और आकार, पतियों, फूलों, सुगंध व बनावट के आधार पर मौसमी बदलाव को जान लेती है। वह अपने आसपास के लगभग सौ वृक्षों को पहचान सकती है जो उसके जीव विज्ञान के अध्यापक की जानकारी से कहीं अधिक है – वही अध्यापक जो यह मानता है कि जनाबाई एक कमजोर विद्यार्थी है।

क्या हम जनाबाई की मदद कर सकते हैं ताकि वह अपनी समझ को जीव विज्ञान की औपचारिक समझ में बदल सके? क्या हम उसे यह भरोसा दिला सकते हैं कि स्कूल का जीव विज्ञान किसी अमूर्त दुनिया के बारे में जानकारी नहीं है जो कठिन भाषा व लंबी पुस्तकों में निहित है। यह उसी खेत के बारे में है जिसमें वह काम करती है, उन जानवरों के बारे में, जिन्हें वह जानती है और जिनकी देखभाल करती है, उस जंगल के बारे में जिसमें से वह रोज़ गुज़रती है। केवल तभी वह वाकई विज्ञान को समझ पाएगी।

मूल्यांकन नहीं होना चाहिए। शिक्षक को बच्चे का अवलोकन करते हुए ही मूल्यांकन भी करना चाहिए और इसे बच्चे के माता-पिता/अभिभावक को भी बताना चाहिए। बच्चे के प्रगति-कार्ड पर सामान्य अवलोकन से मालूम हुए उसकी अभिरुचि, क्षमता, कुशलता, स्वास्थ्य की स्थिति आदि की सूचना होनी चाहिए। कक्षा तीन से पाँच तक के पठन-पाठन को ज़्यादा संरचित किया जा सकता है लेकिन इसे सतत मूल्यांकन पर ही आधारित रहना चाहिए। मूल्यांकन में बच्चे के विविध आयामों के बारे में और ज़्यादा जानने हेतु गहरी पैठ होनी चाहिए। इनमें से बच्चे के सीखने के कुछ आयाम हैं: भाषा की समझ, पढ़ने की क्षमता, अभिव्यक्ति की काबिलियत, खुद अपने हाथों से काम करने से लेकर समूह में काम करने की कुशलता, अवलोकन, वर्गीकरण, ड्राइंग आदि करने के कौशल आदि। ये सभी इस अवस्था के बच्चों के अधिगम के आवश्यक अंग हैं।

प्राथमिक शिक्षा की पूरी अवधि में किसी भी तरह की औपचारिक सावधि जाँच-परीक्षा नहीं होनी चाहिए। साथ ही अंक या ग्रेड देने, पास या फेल करने की किसी भी तरह की पहलकदमी नहीं होनी चाहिए। इसीलिए इस स्तर पर बच्चों को अगली कक्षा में जाने से नहीं रोका जाना चाहिए। इस स्तर पर मेरिट कायम करने से अनिवार्यत: बचना चाहिए। कक्षा-शिक्षक को लगातार मूल्यांकन करते रहना चाहिए, वह भी दिए गए दिशा-निर्देशों के अनुसार ही यानी बच्चे के व्यक्तित्व के विविध पक्षों को जानने के लिए ही यह मूल्यांकन होना चाहिए।

5.2.2 उच्च प्राथमिक स्तर (कक्षा 6 से कक्षा 8 तक)

उच्च प्राथमिक स्तर पर बच्चे का विज्ञान से पहली बार परिचय होता है इसलिए यही समय है जब उसे जानना चाहिए कि विज्ञान पढ़ने का क्या मतलब होता है। इस स्तर पर आकर धीरे-धीरे प्राथमिक स्तर के पर्यावरण

अध्ययन को विज्ञान और प्रौद्योगिकी की दो शाखाओं में बँट जाना चाहिए।

इस स्तर पर पढ़ाने के लिए चुनी गई वैज्ञानिक अवधारणाएँ बच्चों के अनुभव जगत से संबंधित होनी चाहिए, ताकि वे इन्हें समझ सकें। कोशिश तो यही रहनी चाहिए कि प्रयोगों/कार्यकलापों के माध्यम से ही वैज्ञानिक धारणाएँ या सिद्धांत बच्चों के सामने प्रस्तुत किए जाएँ, लेकिन इस आगमन विधि के प्रति दृढ़ रहना अनिवार्य नहीं है । यह ध्यान देने लायक बात है कि अधिकांश प्रयोग/कार्यकलाप ज़्यादा खर्चीले नहीं होते और तत्काल उपलब्ध वस्तुओं के माध्यम से उन्हें करना कठिन नहीं है। इसलिए विज्ञान की पाठ्यचर्या में प्रयोग जैसा मुख्य व केंद्रीय अवयव सभी स्कूलों के लिए अनिवार्य किया जा सकता है, भले ही स्कूलों में मौजूद सुविधाएँ अपर्याप्त हों। ऐसा देखा गया है कि प्रयोग-आधारित विज्ञान शिक्षण विपरीत परिस्थितियों में भी संभव है और इसके लिए ज़्यादा बाहरी संसाधनों की ज़रूरत नहीं पड़ती।

इस स्तर पर विषय-वस्तु को संकाय जनित दृष्टिकोण से नहीं देखना चाहिए और न ही इसे माध्यमिक स्तर के विज्ञान-पाठ्यचर्या का हल्का/आसान संस्करण-सा होना चाहिए। प्रौद्योगिकी के तहत सरल मॉडल की डिज़ाइनिंग व निर्माण, सामान्य यांत्रिक व वैद्युत उत्पादों तथा स्थानीय प्रौद्योगिकी का व्यावहारिक ज्ञान आदि पढ़ाया-सिखाया जा सकता है। यह बात ध्यान में रखना ज़रूरी है कि देश के विभिन्न भागों में प्रौद्योगिकी की प्रकृति में बहुत विविध ता है जिससे विभिन्न भागों में रहने वाले बच्चे वाकिफ होते हैं। इन विविधताओं और तद्जन्य अभिरुचि को संदर्भपरक प्रोजेक्ट के द्वारा स्पष्ट किया जाना चाहिए।

सरल प्रयोगों और स्वयं करके सीखने के अनुभवों के अलावा बच्चों (समूह में) को अर्थपूर्ण या सोद्देश्य अनुसंधान में लगाना खासकर ऐसी समस्याओं के लिए जो उनके द्वारा सार्थक और महत्त्वपूर्ण समझी जाएँ इस अवस्था में बच्चों को सीखने से जोड़े रखने के लिए, एक ज़रूरी शिक्षा शास्त्रीय व्यवहार है। अनुसंधान उन समस्याओं पर हों जिन्हें वे खुद महत्त्वपूर्ण समझते हों। ऐसा कक्षा में शिक्षक व साथियों से बातचीत करके, समाचार-पत्रों से सूचनाएँ इकट्ठा करके, जानकार लोगों से बातचीत करके आसानी से उपलब्ध आँकड़े संग्रह करके और ऐसे डिज़ाइन के माध्यम से, साधारण अन्वेषण जिसमें विद्यार्थी की भूमिका ही प्रमुख होनी चाहिए, आदि कार्यकलापों द्वारा किया जा सकता है। सूचनाओं का संगठन तथा प्रदर्शन करना (स्कूल में और स्कूल के बाहर), स्क्रिप्ट्स व नाटक के द्वारा इस स्तर पर शिक्षण के महत्त्वपूर्ण अंग होने चाहिए, ताकि ज़्यादा-से-ज़्यादा भागीदारी हो और सीखे हुए को बाँटा जा सके। वैज्ञानिकों और अन्वेषकों (खोजकर्ताओं) की जीवनी बच्चों को प्रेरणा दे सकती है या उनके जीवन से कुछ सीखने के लिए उत्साहित कर सकती है।

उच्च प्राथमिक स्तर की पूरी अवधि में प्रक्रिया-कौशलों पर ही जोर डालना चाहिए ताकि बच्चा खुद की पहलकदमी से, अपने स्तर पर ही कैसे सीख पाता है, यह सीख सके। यह उन्हें स्कूल के बाहर व स्कूल के बाद भी काम आता है।

सतत व सावधि मूल्यांकन (यूनिट टेस्ट, टर्म की समाप्ति पर टेस्ट) होना चाहिए। वार्षिक परीक्षाओं को ज़्यादा अहमियत देने की ज़रूरत नहीं है। साथ ही उच्च प्राथमिक स्तर पर मूल्यांकन पूर्णतः आंतरिक होना चाहिए। बोर्ड-परीक्षाएँ नहीं होनी चाहिए। प्रत्यक्ष ग्रेडिंग व्यवस्था को अपनाया जाना चाहिए। रिपोर्ट कार्ड पर मूल्यांकन के विभिन्न अवयवों में प्राप्त ग्रेड उल्लिखित होने चाहिए। पास या फेल ग्रेड नहीं देना है और न ही बच्चे को अगली कक्षा में जाने से रोकना है। प्रत्येक उस बच्चे, जिसने स्कूली शिक्षा के आठ वर्ष पूरे कर लिए हों, को नौवीं कक्षा में प्रवेश मिलना चाहिए। इस स्तर पर मेरिट क्रम निर्धारित करने से बचना चाहिए।

सावधि जाँच में लिखित व प्रयोग-आधारित दोनों तरह की जाँच परीक्षाएँ ली जानी चाहिए, जिनके प्रश्न-पत्र पढ़ाने वाले शिक्षक ही तैयार करें। इस स्तर पर, ओपेन बुक परीक्षा यानी किताब से देखकर लिखने की छूट वाली परीक्षा अपनाई जा सकती है, ताकि महज़ सूचनाओं की जाँच करने वाले प्रश्न-पत्रों के प्रचलित ढर्रे से अलग कुछ किया जा सके। परीक्षा का उद्देश्य होना चाहिए बच्चे के व्यावहारिक तथा समस्या समाधान कौशलों, आँकड़ों

को विश्लेषित करने की योग्यता, सीखे गए को प्रयोग में ला सकने की योग्यता, सिद्धांतों या अवधारणाओं की समझ और आसान सांख्यिक समस्याओं को हल करने की क्षमता की जाँच के साथ-साथ पढ़ने, समझने और ग्राफ़ द्वारा अभिव्यक्ति कर सकने की जाँच।

इस स्तर पर बच्चे किशोरावस्था में प्रवेश करते हैं और घर में लगी पाबंदियों व माता-पिता या अभिभावक के द्वारा लादी गई अनुशासनात्मक सीमाओं को लाँघने की कोशिश करते हैं। खुद को आज़ाद समझने को पुष्ट करने के लिए धूम्रपान, ड्रग्स व सेक्स की तरफ़ उन्मुख होने की प्रवृत्ति उनमें पनप सकती है। विज्ञान शिक्षा में मानव शरीर, प्रजनन, सेक्स, ड्रग्स, धूम्रपान आदि पर तथ्यात्मक जानकारी दी जाती है। लेकिन कक्षा में, वे इन पर बहस आदि कर व्यापक दृष्टिकोण विकसित कर सकें, ऐसा नहीं हो पाता। स्कूल में हर सप्ताह कुछ समय नियत कर देना चाहिए जब बच्चे जानकारी प्राप्त कर सकें, अपने संदेहों व चिंताओं पर अपने शिक्षकों या विशेष सलाहकारों से बहस कर किसी स्पष्ट निष्कर्ष की ओर उन्मुख हो सकें, इसे स्कूल में बाद के वर्षों तक जारी रखा जाना चाहिए।

5.2.3 माध्यमिक स्तर (कक्षा 9 और कक्षा 10)

उच्च प्राथमिक स्तर पर विज्ञान को एक संकाय के रूप में पढ़ाए जाने की जो शुरुआत हुई, उसे इस स्तर पर ज़्यादा मजबूत करना चाहिए। अब पाठ्यचर्या में सिद्धांत, अवधारणाएँ व विज्ञान के नियम लाए जा सकते हैं, लेकिन बल इन्हें सीखने पर होना चाहिए, न कि केवल परिभाषाओं को रटे जाने पर। विषय-वस्तु के स्तर पर वर्तमान पाठ्यचर्या माध्यमिक स्तर के लिए ठीक ही है, लेकिन पाठ्यचर्या-बोझ को कम करना अत्यंत ज़रूरी है, ताकि बच्चों के पास अन्य गतिविधियों और पाठ्येतर कार्यकलापों के लिए समय व ऊर्जा बच सके।

इस स्तर पर वे सिद्धांत लाए जाने चाहिए जो सहज सीधे अनुभव जगत से नहीं जुड़े हों। चूँकि सभी परिघटनाएँ सीधे अवलोकन योग्य नहीं होतीं, इसलिए विज्ञान अनुमान और व्याख्याओं का भी सहारा लेता है। जैसे परमाणुओं के होने व उनके लक्षणों को जानने के लिए या मानव-विकास की परिघटना को समझने के लिए अनुमान द्वारा ही क्रमवार, लेकिन तर्क से जुड़े, कथनों/निष्कर्षों का सहारा लिया जाता है । इस स्तर तक बच्चे में वैज्ञानिक तथ्यों की ज्ञान-मीमांसीय परख कर सकने की क्षमता विकसित हो जानी चाहिए।

सैद्धांतिक अवधारणाओं को जानने या उनकी सत्यता को जाँच करने के लिए प्रयोग, ख़ासकर मात्रात्मक मापन, इस स्तर पर पाठ्यचर्या का अहम हिस्सा होना चाहिए। इस स्तर पर जो तकनीक-जनित मॉड्यूल्स परिचित कराए जाएँ, उन्हें पूर्वस्तर के मॉड्यूल्स का डिज़ाइन, स्कूल-कार्यशाला के माध्यम से उनको कार्यान्वित करके देखना और संभव हो तो इसमें उनकी मात्रात्मक/गुणात्मक क्षमता की जाँच शामिल की जा सकती हैं। प्रयोगों को पाठ्यचर्या का हिस्सा होना चाहिए, ताकि उनके प्रति उदासीन नहीं रहा जा सके। हालाँकि इस हिस्से का मूल्यांकन आंतरिक ही होना चाहिए। सैद्धांतिक लिखित परीक्षा, जिसमें दसवीं की बोर्ड परीक्षा भी शामिल है, में कुछ प्रश्न प्रयोग/तकनीकी मॉड्यूल पर आधारित होने चाहिए।

सह पाठ्यचर्यात्मक कार्यकलापों में भागीदारी को महत्त्वपूर्ण और एकसमान अनिवार्यता मिलनी चाहिए। इसके तहत स्थानीय स्तर के मुद्‌दों पर परियोजना कार्य (शिक्षकों से परामर्श लेकर) लिए जा सकते हैं, उनका विज्ञान और प्रौद्योगिकी के माध्यम से समाधान ढूँढ़ना शामिल है।

उपरोक्त सभी आयामों को पाठ्यचर्या में जोड़कर एक-रूप कैसे किया जाए, इसे रचनात्मक ढंग से ही सोचना चाहिए। उच्च प्राथमिक स्तर व माध्यमिक स्तर की पाठ्यचर्याओं में क्षैतिज एकता व उर्ध्वाधर निरंतरता होनी चाहिए।

5.2.4 उच्च माध्यमिक स्तर (कक्षा 11 और 12)

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में प्रस्तावित प्रावधान के अनुसार उच्च माध्यमिक स्तर पर दो विषयों, अकादमिक

और वोकेशनल में विज्ञान को पढ़ाए जाने के मामले पर पुनर्विचार किया जा सकता है, ताकि विद्यार्थी को अपनी रुचि के अनुसार विषय चुनने की स्वतंत्रता हो। यहाँ यह बात ध्यान रखने की ज़रूरत है कि सभी विषयों का सभी स्कूलों या कॉलेजों में उपलब्ध होना संभव नहीं है।

इस स्तर पर पाठ्यचर्या को संकायपरक बनाया जा सकता है, जिसमें उपयुक्त वजन व गहराई हो। लेकिन ध्यान रहे पाठ्यक्रम बोझिल नहीं होने पाए। पाठ्यक्रम का बोझ कम करना ज़रूरी है लेकिन ऐसा करते हुए ध्यान रखना होगा कि माध्यमिक और उच्च माध्यमिक कक्षाओं के पाठ्यक्रम के बीच का अत्यधिक अंतर कम किया जाए। साथ ही यह भी ध्यान रखना होगा कि उच्च माध्यमिक स्तर का पाठ्यक्रम सिर्फ़ माध्यमिक स्तर से कुछ ही ज़्यादा भर न हो। प्रयोग, तकनीकी व खोजपरक परियोजनाओं पर ज़्यादा जोर देना चाहिए।

इस स्तर के लिए उपयुक्त विषय-वस्तु को तय करने के लिए सभी तकनीकी बारीकियों को ध्यान में रखना होगा । जो बात स्पष्ट करनी है- वह यह कि इसमें क्या नहीं होना चाहिए इस बात का ध्यान रखा जाए। इसमें विषय-वस्तु को सूचनाओं से भरा नहीं होना चाहिए और न ही उक्त विषय के सभी पक्षों को समाविष्ट करने के उद्देश्य से उसे तैयार किया जाना चाहिए। किसी भी विषय में ज्ञान अथाह समुद्र होता है। विद्यार्थी की क्षमता और समय के अभाव को देखते हुए कुछ प्रमुख क्षेत्रों की पहचान करना यानी सीमारेखा खींचना ज़रूरी है। एक अच्छी पाठ्यचर्या को संबंधित विषय की महत्त्वपूर्ण धारणाओं को केंद्र में रखना चाहिए, साथ ही उसे इस भाँति संगत होना चाहिए कि विद्यार्थी को सीखने में आसानी हो। गहराई इतनी ज़रूर होनी चाहिए कि विद्यार्थी मूलभूत बातों की समझ रख पाए, भले ही विषय का पूरा श्रमसाध्य ज्ञान न हो। इस स्तर पर सैद्धांतिक पक्ष को, समस्या समाधान, धारणापरक कमियों के प्रति जागरूकता और विभिन्न विषयों की आलोचनात्मक पड़ताल करने की ओर उन्मुख करने वाला होना चाहिए। विज्ञान की प्रमुख धारणाओं के ऐतिहासिक विकास की कहानी विषय-वस्तु के साथ ही समझदारी के साथ समाहित होनी चाहिए। सैद्धांतिक पक्षों की पढ़ाई और उन पर आधारित प्रयोग एक साथ गुँथे होने चाहिए और एक साथ ही सिखाया जाना चाहिए। कुछ प्रयोग ऐसे होने चाहिए, जिनका परिणाम पहले से ही तय नहीं हो। इससे संकल्पनाओं के निर्माण व अवांछित परिणाम की व्याख्या के लिए विद्यार्थियों को अवसर मिलेगा।

पर्यावरण के अनुकूल सामग्रियों पर ज़ोर डालते हुए, यही वह स्तर है जब रसायन की प्रयोगशाला में 'माइक्रोकेमिस्ट्री' को प्रयोग के साधन के रूप में, शुरू किया जा सकता है। साथ ही जीव विज्ञान की प्रयोगशाला कार्य में भी इसे बतौर साधन इस्तेमाल किया जा सकता है। माइक्रोरासायनिक तकनीक अपेक्षाकृत सस्ता व सुरक्षित होती है।[33]

इस स्तर पर कई तरह की पाठ्य सहगामी गतिविधियाँ की जा सकती हैं: स्थानीय मुद्दों का विज्ञान और प्रौद्योगिकी के माध्यम से समाधान करना, राष्ट्रीय विज्ञान मेलों में रचनात्मक/खोजपरक परियोजना के माध्यम से भागीदारी और साथ ही गणित और विज्ञान ओलंपियाड में भाग लेना; विद्यार्थियों को विज्ञान, तकनीकी और समाज से अंतर्संबंधित मुद्दों पर बहस व वाद-विवाद में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया जाना आदि। ये सभी पाठ्य सहगामी गतिविधियाँ पठन-पाठन का हिस्सा होंगी, लेकिन इनका मूल्यांकन नहीं किया जाए।

चूँकि इस स्तर पर पाठ्यचर्या सामग्री उन विद्यार्थियों के लिए भी है, जो आगे चलकर विज्ञान के क्षेत्र में ही कैरियर बनाना चाहते हों, और उनके लिए भी जो ज़्यादा चुनौती भरी सामग्री के लिए उत्साहित होते हैं, ज़रूरी है कि पाठ्यपुस्तकों में कुछ ऐसे भी भाग हों जो इनकी जरूरत को ध्यान में रखते हुए विकसित किए गए हों। परंतु इनका मूल्यांकन नहीं किया जा जाना चाहिए। विज्ञान में आगे क्या संभावनाएँ हैं, इसके बारे में विद्यार्थियों की ज्ञान-वृद्धि के लिए आवश्यक सूचनाएँ पाठ्यपुस्तकों में शामिल की जा सकती हैं।

पढ़ाने के तरीके जितने ही ज़्यादा विविध होंगे, उतने ही ज़्यादा विद्यार्थियों तक पहुँचा जा सकेगा। आई. सी. टी. का विज्ञान शिक्षण में बड़े पैमाने पर उपयोग किया जा

सकता है (देखें विज्ञान शिक्षा में आई. सी. टी.)। कक्षा का वातावरण ऐसा होना चाहिए जिसमें प्रश्न पूछने, बहस करने व वाद-विवाद करने के लिए विद्यार्थियों का उत्साहवर्द्धन किया जाए, जो उनके परा-संज्ञानात्मक कुशलता को भी बढ़ाए।

प्रयोग और प्रौद्योगिकी मॉड्यूल्स का लगातार आंतरिक मूल्यांकन, यहाँ तक कि 12वीं की अंतिम परीक्षा के लिए भी, होना चाहिए। सिद्धांत-आधारित प्रश्नपत्रों (12वीं की बाह्य परीक्षा में भी) में कुछ प्रश्न प्रयोग तकनीकी आधारित होने चाहिए। इस दिशा में सबसे बड़ा सुधार यह किया जा सकता है कि विद्यार्थियों की अपनी गति के हिसाब से विभिन्न विषयों में अलग-अलग समय पर परीक्षा में बैठने की सुविधा दी जाए और बाद में सभी को जोड़ दिया जाए। इससे उन्हें एक साथ सभी विषयों में परीक्षा देने के बोझ से बचाया जा सकता है।

6. रूपरेखा से विषय-वस्तु की ओर : कुछ प्रमुख मुद्दे और सरोकार

विगत दशकों में भारत में राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा के उद्देश्य व एप्रोच पर कोई खास प्रश्नचिह्न नहीं लगाया जा सकता है। विश्व स्तर पर शिक्षा में आए बदलावों के साथ यह भी विकसित होती रही है। विज्ञान शिक्षा में मुख्य समस्या रही है पाठ्यचर्या के लक्ष्यों और उनके क्रियान्वयन की जोकि पाठ्यक्रमों, पाठ्यपुस्तकों और कक्षा के भीतर के व्यवहारों व परीक्षा के द्वारा किया जाता है, के बीच फ़ासला होना। इन बातों को ध्यान में रखकर रणनीति बनाने की ज़रूरत है ताकि पाठ्यचर्या नवीकरण महज़ 'कागज़' पर न रहकर वास्तव में स्कूली व्यवस्था को फ़ायदा पहुँचा सके। इस भाग में हम इन्हीं में से कुछ प्रमुख मुद्दों व ज़रूरतों पर बात करेंगे।

6.1 आधारिक संरचना

पाठ्यचर्या द्वारा निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए न्यूनतम आधारिक संरचना ज़रूरी है। अभी अधिकांश स्कूलों में यह अपर्याप्त है । प्रत्येक स्कूल में कम-से-कम एक भवन, पर्याप्त कमरे, एक खेल का मैदान, पीने का पानी और शौचालय होना चाहिए । अभी भी हमारे देश में अनेक स्कूल हैं जहाँ पानी व शौचालय नहीं हैं, अन्य सुविधाएँ तो दूर की बातें हैं । इनके अतिरिक्त, विज्ञान शिक्षा के लिए कुछ अतिरिक्त संसाधन होने चाहिए। प्रत्येक प्राथमिक स्कूल में एक 'एक्टिविटी कमरा' या ऐसी कोई जगह होनी चाहिए जहाँ बच्चे व्यक्तिगत या छोटे-छोटे समूह के स्तर पर क्रियाकलाप के लिए जमा हो सकें। इस कमरे में तसवीरें, चार्ट, मॉडल जमा किए जा सकते हैं जो बाहर से लाए जा सकते हैं या जिन्हें बच्चे खुद व शिक्षक भी तैयार कर सकते हैं। कुछ आवश्यक औज़ार मसलन, हैंड लेंस, चुंबक, कैंची, पेन-चाकू व टॉर्च-लाइट भी यहाँ रखे जा सकते हैं। एक बड़ा ग्लोब और शरीर के अंगों के मॉडल आदि अनिवार्य शिक्षण सामग्री हैं। पहेली, विज्ञान के खिलौने आदि भी दिए जा सकते हैं। विद्यार्थियों व शिक्षकों की ज़रूरतों व उम्र के अनुरूप किताबें उपलब्ध होनी चाहिए। शिक्षक के लिए निर्देशिका किताबें, विज्ञान की लोकप्रिय किताबें, शब्दकोष, इनसाइक्लोपीडिया और अन्य संदर्भ ग्रंथ भी उपलब्ध होने चाहिए। एक छोटी-सी कार्यशाला भी बनाई जा सकती है। वहाँ डिज़ाइन व स्वयं गढ़ने के तरीके सीखने के लिए छोटे-छोटे उपकरण हों। कक्षा की ही तीन दीवारों को ब्लैकबोर्ड के रूप में बदला जा सकता है जिस पर लिखने व चित्रकारी के लिए बच्चों को उत्साहित किया जाना चाहिए। उच्च प्राथमिक स्तर के लिए, इस एक्टिविटी कमरे में छोटे-छोटे प्रयोग करने हेतु ज़रूरी सामान उपलब्ध कराए जाने चाहिए। साथ ही, नमूने डिज़ाइन करने के लिए स्कूल में कार्यशाला अवश्य होनी चाहिए।

माध्यमिक और उच्च माध्यमिक स्तर पर इन सुविधओं को और ज़्यादा 'उच्च स्तर का होना होगा । सुनियोजित प्रयोगशालाएँ, इंटरनेट व मल्टीमीडिया सुविधाएँ (कम से कम शिक्षकों के लिए) और समृद्ध पुस्तकालय, जिसमें रोज़गार संबंधी सूचनाएँ प्रदान करने वाली किताबें भी हों-ये सब माध्यमिक व उच्च माध्यमिक स्तर के लिए ज़रूरी हैं। यदि सभी स्कूलों में यह संभव नहीं हो सके तो कम से कम विज्ञान संसाधन केंद्रों में इन्हें उपलब्ध

कराया जाना चाहिए। पंचायत/प्रखंड/ज़िला स्तर पर चलती फिरती प्रयोगशाला (मोबाइल प्रयोगशाला) में इन्हें उपलब्ध कराया जाना भी कारगर सिद्ध होगा। साथ ही, हमें यह ध्यान में रखना चाहिए कि प्रत्येक में परिवेश समृद्ध प्राकृतिक व मानवीय संसाधन उपलब्ध होते हैं जिनका रचनात्मक इस्तेमाल किया जा सकता है।

स्कूलों में संसाधनों की असमान उपलब्धता बड़े फ़ासलों को जन्म देती है, जो हमारे संविधान के 'अवसर की समानता' के दावे के विरुद्ध है। संसाधनों के अभाव का दूसरा नकारात्मक प्रभाव भी देखने को मिलता है। इसने पाठ्यचर्या-निर्माताओं व पाठ्यपुस्तक लेखकों को इसी संदर्भ में सोचने की प्रवृत्ति को जन्म दिया है। उन्होंने अपने कार्य को कम सुविधाओं ओर प्रेरणा देने वाली सोच के अनुसार ही ढाला है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि संसाधनों की माँग/ज़रूरत इच्छा जनित विलासिता के लिए होती है, न कि विज्ञान-शिक्षण की अनिवार्यता के लिए। इस अंतर्विरोध को खत्म करना ज़रूरी है।

6.2 पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तकें और सामग्री

विगत दशकों के अनुभव हमें बताते हैं कि पाठ्यचर्या की रूपरेखा के उद्देश्यों और इनके व्यवहारों से समझौता-पाठ्यक्रम विकसित करने और पाठ्यपुस्तक लिखने की प्रक्रिया से ही शुरू हो जाता है। पाठ्यचर्या-निर्माण के समय हमें यह ध्यान में रखना चाहिए कि शिक्षक नीति संबंधी दस्तावेज़ों को प्राय: नहीं देखते और यदि उनका कुछ वास्ता इनसे होता भी है, तो वह महज़ पाठ्यपुस्तकों तक जिसे उन्हें पढ़ाना है। इसलिए पाठ्यचर्या-निर्माण की प्रक्रिया में हमें ऐसे प्रावधान करने होंगे ताकि पाठ्यक्रमों, पाठ्यपुस्तकों और कक्षा की गतिविधियों तक इसकी आवाज़ पहुँच सके। यदि हम इसे कार्यान्वित होते हुए देखना चाहते हैं तो हमें कुछ महत्त्वपूर्ण मुद्दों को ध्यान में रखना होगा।

6.2.1 संदर्भीकरण

पाठ्यचर्या इस रूप में ली जानी चाहिए कि यह राष्ट्रीय स्तर पर शिक्षा के लिए कुछ सामान्य मानकों को तय करे। कोई भी पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तक पूरे देश के लिए उपयुक्त नहीं हो सकते। विभिन्न राज्यों की स्कूली व्यवस्था को अपनी पाठ्यचर्या खुद विकसित करनी होगी। इसलिए पाठ्यचर्या नवीकरण के व्यापक निर्देशों के तहत विकसित पाठ्यक्रम व पाठ्यपुस्तकों में स्थानीय ज़रूरत के अनुसार संदर्भीकरण और विविधता को सभी स्कूली अवस्थाओं के लिए स्थान देना होगा।

कई समूहों व स्वायत्त संस्थानों ने वैकल्पिक पाठ्यचर्या पुस्तकें विकसित करने का प्रयास किया है। लेकिन स्कूली व्यवस्था की पाठ्यचर्या की कठोरता ने इन प्रयासों को जगह नहीं दी। ऐसा प्राथमिक स्तर पर भी होते हुए पाया गया है, जहाँ ज़्यादा स्वायत्तता व लचीलेपन की दरकार होती है।

राज्य द्वारा कम कीमत वाली/मुफ़्त पाठ्यपुस्तकों के उत्पादन व वितरण की व्यवस्था महज़ एक पाठ्यपुस्तक छापने तक सीमित रह गई। हालाँकि छपाई-तकनीकी के विकास से अब यह संभव हो गया है कि एक ही पाठ्यपुस्तक के कई संस्करण छप सके, जो क्षेत्रीय, सांस्कृतिक और भाषिक विविधता के अनुसार थोड़े से फेरबदल लिए हुए हों, क्योंकि अब कम कीमत में कम समय में कम मात्रा में भी छपाई संभव हो गई है।

6.2.2 कार्यकलाप-आधारित सीखना

विज्ञान शिक्षा के लिए कार्यकलाप-आधारित पठन-पाठन एक ज़रूरत है, इसे स्वीकार किया जाता है और इस स्वीकृति के चिह्न पाठ्यपुस्तकों (राष्ट्रीय/राज्य स्तरीय) में पाए गए हैं, लेकिन कक्षा-व्यवहार के रूप में इसका रूपांतरण नहीं हो पाया। अभी भी कार्यकलापों को पाठ्यपुस्तक में दी गई धारणाओं/संकल्पनाओं की सत्यता को जाँचने तक ही सीमित करके देखा जाता है, न कि ऐसी गतिविधि के रूप में जिसके परिणाम पहले से तय न हों यानी ऐसी खोजबीन जिसके एक से अधिक उत्तर हो सकते हैं। यह धारणा सामान्य हो गई है कि कार्यकलाप आधारित पठन-पाठन खर्चीला व ज़्यादा समय लेने वाला होता है जबकि उतने ही प्रभावी परिणाम के लिए पाठ्यपुस्तक-आधारित पठन-पाठन से काम चल जाता

है। साथ ही यह धारणा भी आम है कि कार्यकलाप या गतिविधि आधारित पठन–पाठन, परीक्षाओं और प्रतियोगी परीक्षाओं के लिए विद्यार्थी को तैयार नहीं कर पाते। जहाँ तक ज़्यादा खर्चीला होने की बात है, इससे इंकार नहीं किया जा सकता। यह सच है कि कई स्कूल हैं जो समृद्ध प्रयोगशालाएँ विकसित नहीं कर सकते। लेकिन आसानी से उपलब्ध संसाधन का उपयोग करते हुए कम खर्चीले कार्यकलाप व गतिविधियाँ और प्रयोग विकसित किए जा सकते हैं। इसलिए कार्यकलापों और प्रयोगों के प्रति उदासीनता के लिए 'खर्च' का बहाना फ़िज़ूल है, कार्यकलाप व प्रयोग विज्ञान शिक्षण के आधार स्तंभ हैं। परीक्षाओं में इनकी उपयोगिता नहीं होने की चिंता को समझा जा सकता है, लेकिन इसके लिए परीक्षा–व्यवस्था में सुधार की ज़रूरत है, ताकि परीक्षाओं में कार्यकलापों व प्रयोगों को ज़्यादा तरजीह दी जाए (देखें 'परीक्षा प्रणाली')। कुल मिलाकर, हमें पाठ्यपुस्तकों के उपागम, पठन–पाठन के तरीके और मूल्यांकन प्रक्रियाओं को विकसित करना होगा ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि सही अर्थों में सीखना, कार्यकलापों से ही होता है।

6.2.3 विषयवस्तु

विज्ञान–पाठ्यचर्या बनाते समय हमें ध्यान में रखना चाहिए कि विषयवस्तु महज़ सूचना प्रदान करने वाली न हो और 'बच्चों' को ऐसे मौके दिए जाएँ जिससे वे विज्ञान का मतलब, 'विज्ञान को करना', समझें। सूचनाओं का बोझ, 'ज्ञान–विस्फोट' का परिणाम है। कोशिश यह होती है कि जो कुछ भी हो चुका है या हो रहा है उसे पाठ्यपुस्तक में जगह मिलनी चाहिए। हमें इस जाल में फँसने से बचना होगा और सूचनाओं से भरी पाठ्यपुस्तक से परहेज़ करना होगा, जो बहस व सोचने के लिए समय नहीं देती। हमने पहले भी इस पर ज़ोर दिया है कि पाठ्यचर्या में किसी भी स्तर पर परिचित कराई जाने वाली वैज्ञानिक धारणाएँ, उस स्तर के बच्चों की समझ के अनुरूप होनी चाहिए। विविध स्तरों पर विषयवस्तु निर्धारित करते समय हमें उस प्रवृत्ति से बचना होगा जिसमें आरंभिक स्तर पर कुछ ऐसी वैज्ञानिक धारणाएँ रटाई जाती हैं, जो बच्चे की समझ से परे होती है और इसके लिए सफ़ाई यह दी जाती है कि बाद में ये सिद्धांत तो बच्चे को पढ़ने ही हैं, इसलिए शुरू से ही वह परिचित हो जाए तो अच्छा होगा। हमें यह जानना चाहिए कि कठिन अवधारणाएँ महज संक्षिप्त रूप से बिना किसी गहराई से प्रस्तुत किए जाने से सरल नहीं हो जाती हैं। बल्कि उचित स्तर के अनुरूप ही उचित विचार, अनुभव व कार्यकलाप चुने जाने चाहिए। साथ ही हमें माध्यमिक व उच्च माध्यमिक स्तर के बीच के आनुपातिक अंतर को भी खत्म करना होगा।

अंततः शिक्षण, विषयवस्तु से अलग नहीं किया जा सकता। इसलिए दोनों का साथ–साथ विकास होना चाहिए। इस आधार पत्र में हमने सुझाव दिया है कि अनौपचारिक तरीके से स्कूल और स्कूल के बाहर की गतिविधियों पर ज़्यादा ज़ोर, प्रायोगिक कार्य, प्रारंभिक तकनीकी मॉड्यूल्स विकसित करने में बायोडाइवर्सिटी के सर्वेक्षणों, स्वास्थ्य एवं पर्यावरण के अन्य पहलुओं में विद्यार्थियों की रचनात्मक अभिव्यक्ति पर होना चाहिए। हमने प्रस्ताव दिया है कि इनमें से ज्यादातर खोजी अन्वेषणात्मक गतिविधियाँ पाठ्यपुस्तक से बाहर होनी चाहिए। हालाँकि जहाँ संभव हो इन गतिविधियों के कुछ भागों को पाठ्यपुस्तकों में शामिल किया जा सकता है।

6.2.4 अच्छी पाठ्यपुस्तकों की बहुलता

एक आदर्श शिक्षा व्यवस्था में पाठ्यपुस्तकें पाठ्यचर्या के कार्यान्वयन के लिए ज़रूरी कई संसाधनों में से एक होती हैं। भारत में अधिकांश विद्यार्थी व शिक्षकों के लिए पाठ्यपुस्तकें एकमात्र उपलब्ध व कम खर्चीले संसाधन हैं। इसलिए देश भर में अच्छी विज्ञान शिक्षा के एकसमान प्रसार के लिए ज़रूरी है कि हम पाठ्यपुस्तकों को प्राथमिक संसाधनों के रूप में लें।

पाठ्यपुस्तकें ऐसी हों जो पाठ्यचर्या के उद्देश्यों की प्राप्ति में मदद करें, जैसाकि हमने पहले ही कहा है। आज की एक बड़ी समस्या है रट कर सीखने के तरीके और इसकी वजह है परीक्षा–पद्धति।[34] पाठ्यपुस्तकें इस स्थिति से निकालने में सहायक सिद्ध हो सकती हैं, यह ऐसे प्रश्नों को उठा सकती हैं, जो अभिरुचि जगाने वाले

और समस्या-समाधान व कार्यकलापोन्मुख हों। दैनंदिन जीवन के अनुभवों के साथ विषय के बाहर व भीतर, विविध पाठ्यचर्या-क्षेत्रों के बीच और विद्यालयी अवस्था के तमाम वर्षों के साथ, पाठ्यपुस्तकें संगत संबंध बना सकती हैं। ऐसे संबंध, सीखने के लिए, ज़ोरदार प्रोत्साहन का काम करेंगे।

बीते दशकों के पाठ्यपुस्तक-लेखन के प्रयासों के प्रति ईमानदारी बरतते हुए हम कहना चाहते हैं कि जिन मुद्दों पर हम बातचीत कर रहे हैं, उन्हें ठीक से सँभालना कठिन काम है । इसे और कठिन बनाती है, मुश्किल व ताकतवर होती जा रही परीक्षा-पद्धति जिसके बारे में हमने आगे चर्चा की है। वैधता मानदंडों के अनुरूप विज्ञान-पाठ्यचर्या को विकसित करना चुनौती भरे बौद्धिक उद्यम से संभव है। शायद इस समस्या का कोई एक संपूर्ण व आदर्श समाधान नहीं है। बल्कि कई आंशिक समाधान हो सकते हैं, जिन्हें संदर्भ ही तय करते हैं। यही वज़ह है कि अपने देश में पाठ्यचर्या विकल्पों और पाठ्यपुस्तक लेखन को विविधता और वैकल्पिक उपागमों से प्रभावित बनाने के लिए कह रहे हैं। राष्ट्रीय एजेंसियाँ अच्छी पाठ्यपुस्तकें विकसित करना जारी रखें जबकि राज्यों को स्थानीय ज़रूरतों के अनुरूप विविध पाठ्यपुस्तकें विकसित करने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

ऐसा वे ज़िला-स्तर पर भी कर सकते हैं। हालाँकि यह व्यावहारिक नहीं लग सकता है, लेकिन यदि संभव हो तो शिक्षकों और शिक्षाविदों को एक साथ मिलकर स्थानीय स्तर पर ऐसी सामग्री तैयार करनी चाहिए जो पाठ्यपुस्तक में उपलब्ध सामग्री के लिए पूरक का काम करे । व्यक्तिगत स्तर पर गैर सरकारी संस्थानों को वैकल्पिक पाठ्यपुस्तकें तैयार करने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। पाठ्यपुस्तकों पर निगाह रखनी ज़रूरी है ताकि शुद्ध व्यापारिक हितों को इसमें पैर पसारने का मौका नहीं मिले और रचनात्मक पाठ्यपुस्तक लेखन के लिए प्रोत्साहन मिल सके।

6.2.5 पाठ्यपुस्तक लेखन-प्रकिया में सुधार

राष्ट्रीय व राज्य स्तरीय संस्थाएँ जिस तरीके से पाठ्यपुस्तक लेखन कर रही हैं उस पर विचार करने की ज़रूरत है। सर्वप्रथम, पाठ्यपुस्तक लेखन के साथ-साथ पाठ्यक्रम का विकास किया जाना चाहिए, जिसमें पाठ्यचर्या द्वारा तय किए गए उद्देश्यों का खयाल रखना ज़रूरी है। दूसरा, पाठ्यपुस्तक लेखन में शिक्षकों की भागीदारी होनी चाहिए। तीसरा, सभी स्तरों के शिक्षकों के साथ मिलकर पाठ्यपुस्तकों की जाँच-पड़ताल की प्रक्रिया शुरू की जानी चाहिए। विज्ञान की पाठ्यपुस्तकों में प्रयोगों/कार्यकलापों के संतुलित समायोजन के लिए 'फ़ील्ड-टेस्टिंग' ज़रूरी है। परंपराओं, शोध से मिली सूचनाओं व फ़ीडबैक की प्रक्रियाओं का पाठ्यपुस्तक विकास के ही एक हिस्से के रूप में, संस्थानीकरण ज़रूरी है। सबसे गंभीर समस्या है ऐसे कार्यों के लिए निर्धारित समय-सीमा, जो इतनी कम होती है कि एकदम से जल्दबाज़ी में पाठ्यपुस्तकों को तैयार करना पड़ता है।

चार रंगों की छपाई का बढ़ता प्रयोग शुभ संकेत है, लेकिन हम अभी भी इसकी संभावनाओं को ठीक से नहीं समझ सके हैं। अभी भी अच्छी पाठ्यपुस्तकें तैयार करने के लिए प्रतिभासंपन्न और निपुण लोगों को खोजना और जोड़ना ज़रूरी है। आधुनिक तकनीकी-जनित सुविधाओं, डिज़ाइन व ग्राफ़िक्स का पूर्णतः उपयोग हो सके, इसके लिए सचेतन व सहयोजित प्रयास भी ज़रूरी हैं। अंततः विविध स्तरों पर पाठ्यपुस्तकों को उपयुक्त छोटे-छोटे भागों में बाँटकर तैयार किया जा सकता है, ताकि बस्ते का बोझ कम हो सके। दूसरे किस्म के बोझों को कम करने के उपायों पर पहले ही बात की जा चुकी है और इस आधार पत्र में सुझाए गए उपायों में भी इसे बताया गया है।

6.3 प्रयोगशाला, कार्यशाला और पुस्तकालय

हमारे प्राथमिक स्कूलों में कार्यकलाप-आधारित विज्ञान शिक्षण की बात अभी चल ही रही है, यह वास्तविकता नहीं बन पाई है, ऐसे में माध्यमिक व उच्च माध्यमिक स्तरों पर प्रायोगिक कार्य व प्रयोगों के प्रति घटती रुचि एक गंभीर मसला है। सिद्धांत व प्रयोग को एक साथ लेकर चलने की जिस धारणा की हम बात कर रहे हैं,

वह मूर्त रूप नहीं ले सकी। कारण है– संसाधनों और कुशल शिक्षकों का अभाव। प्रायोगिक परीक्षाओं के प्रति घटती गंभीरता ने पहले इसे परीक्षा से हटाने और अंततः शिक्षण में भी तुच्छ सा स्थान देने या फिर शिक्षण व्यवहार से बिल्कुल ही हटाने की धारणा को बल प्रदान किया। यह बात है कि प्रयोग विज्ञान सीखने और करने की मूलभूत शर्त है, इसके प्रति ज़ागरूकता व प्रतिबद्धता की कमी के लिए प्रायः व्यावहारिक दिक्कतों का बहाना बनाया जाता है। संसाधनों से समृद्ध स्कूलों में भी प्रायोगिक कार्य श्रृंगार–मात्र के रूप में लिए जाते हैं। हमने पहले ही कहा है कि आर्थिक कारण प्रयोगों को तरजीह नहीं दिए जाने के लिए, उचित कारण नहीं है। क्योंकि सस्ते वैज्ञानिक प्रयोग विकसित करना भी संभव है।

हमारी व्यवस्था में प्रयोग व गतिविधियों के हाशियेकरण का कारण बाह्य परीक्षाओं द्वारा इनके मूल्यांकन का नहीं होना है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि इन पर 'बाह्य परीक्षा' का ठप्पा लगा देने से ये गंभीरतापूर्वक लिए जाएँगे। हमने प्रस्तुत आधार पत्र में इस समस्या से जूझने के दो रास्ते बताए हैं:

1. अनौपचारिक चैनलों के माध्यम से पाठ्यचर्या के प्रायोगिक/तकनीकीगत/रचनात्मक पक्षों को प्रोत्साहित करना।
2. सिद्धांत वाले प्रश्न–पत्र में प्रयोग/तकनीकी आध ारित प्रश्नों का समावेशा हम जानते हैं कि ये केवल तात्कालिक (Interim)कदम है; ताकि विज्ञान–पाठ्यचर्या में प्रयोगों के प्रति बढ़ती उदासीनता को तत्काल रोका जा सके। अंततः स्कूल में प्रयोगशालाओं व कार्यशालाओं की स्थापना व उनका समृद्धीकरण, बाह्य परीक्षाओं (औपचारिक परीक्षाओं) की महत्ता को कम करना और स्कूलों में प्रायोगिक संस्कृति को बढ़ावा देने जैसे उपायों का कोई विकल्प नहीं है। यही हमारे लक्ष्य को पूरा कर सकते हैं। ऐसी परियोजनाएँ जो सार्वजनिक आँकड़ों का इस्तेमाल करती हों के साथ–साथ कंप्यूटर आधारित प्रयोग व परियोजनाएँ भी होनी चाहिए।

एक और गंभीर मसला है, बच्चों में पढ़ने की आदत में गिरावट। बच्चों को केवल अच्छी पाठ्यपुस्तकें ही नहीं, बल्कि दूसरी किताबों को भी पढ़ने की ज़रूरत है, यदि उन्हें समझने की क्षमता को विकसित करना है। पाठ्यचर्येत्तर परियोजनाओं का लक्ष्य होना चाहिए– बच्चे को ज़्यादा से ज़्यादा पढ़ने व दिए गए विषय से संबंधित सामग्री को जुटाने के लिए उन्मुख करना। स्कूल के पुस्तकालय में इन ज़रूरतों को ध्यान में रखते हुए आवश्यक किताबें होनी चाहिए। साथ ही स्कूलों में बच्चे में पढ़ने व खोजने की आदत डालने के लिए आवश्यक पहलकदमी होनी चाहिए।

6.4 विज्ञान शिक्षा में सूचना एवं संचार तकनीक (आई.सी.टी.)

रेडियो और इन दिनों दूरदर्शन ने संचार के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। सत्तर के दशक में किया गया उपग्रह अनुदेशीय दूरदर्शन प्रयोग (सेटेलाइट इंस्ट्रक्शनल, टेलिविजन एक्सपेरिमेंट (एस.आई.टी.ई.) वैश्विक स्तर पर संभवतः सबसे बड़ा सामाजिक प्रयोग था जिसने शिक्षा के क्षेत्र में उपग्रह–संचार की महत्ता को स्थापित कर दिया। तब से शैक्षिक तकनीकी को देश भर में शिक्षा को सार्वभौमिक बनाने के मुख्य औजार के रूप में देखा जाने लगा है। विगत दो दशकों से कंप्यूटर का बढ़ता प्रयोग दूरसंचार में हुए विकास और इंटरनेट ने अन्य तकनीकी उपक्रमों के साथ मिलकर सूचना एवं संचार तकनीकी के रूप में शिक्षा के क्षेत्र में जहाँ नए अवसर खोले, वहीं नयी चुनौतियों को भी जन्म दिया।

हालाँकि विज्ञान के शिक्षण में आई.सी.टी. के उपयोग की महत्ता को अच्छी तरह स्वीकारा जा चुका है, लेकिन व्यवहार के स्तर पर अभी भी ज़मीन खाली पड़ी है। प्रयास हुए भी हैं तो छिटपुट व टुकड़ों में उन्नीस सौ अस्सी के दशक की शुरुआत में स्कूली शिक्षा में कंप्यूटर की पढ़ाई शामिल की गई स्कूलों में कंप्यूटर साक्षरता और अध्ययन (कंप्यूटर लिटरेसी एंड स्टडीज़ इन स्कूल्स–क्लास) योजना के तहत। लेकिन ढाँचे, उपयुक्त

सॉफ्टवेयर और कुशल प्रशिक्षकों का अभाव पाया गया। आज का परिदृश्य बदला हुआ है। स्कूल, घर और कार्यस्थल पर कंप्यूटर के बढ़ते प्रयोग व इंटरनेट के फैलते जाल को देखते हुए आई.सी.टी. शिक्षा के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण उपकरण के रूप में उपयुक्त होने के दावे के साथ सामने खड़ा है, लेकिन यह तभी ग्राह्य है जब विज्ञान के विभिन्न संकायों में गुणवत्तापूर्ण सॉफ्टवेयर उपलब्ध कराए जाएँ।

स्कूलों में विभिन्न स्तरों पर अंग्रज़ी व अन्य भारतीय भाषाओं में उपयुक्त मल्टीमीडिया सॉफ़्टवेयर आज भी दूर की कौड़ी है। स्वतंत्र सॉफ़्टवेयर समूहों ने देश के विभिन्न भागों के स्थानीय भाषाओं में सॉफ्टवेयर विकसित करने की पहलकदमियाँ की हैं। ज़रूरी है तो सहयोगात्मक प्रयासों की जिसमें सरकारी संस्थान व ग़ैर सरकारी संस्थान (जो क्षेत्र में काम कर रहे हैं) अपने संसाधनों व विशेषज्ञता का परस्पर उपयोग करें। सॉफ्टवेयर निर्माण एक खर्चीला काम है और सरकार को इसके लिए आवश्यक फंड मुहैया करवाना होगा। इस तरह बनाए गए सॉफ़्टवेयर को इंटरनेट व सीडी-रोम के माध्यम से भलीभाँति वितरित करना भी ज़रूरी है। स्वतंत्र सॉफ्टवेयर को विशेषकर प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए।

'परिवेश और सीखना' पर गठित फोकस समूह ने भारत भर में खुले पक्षपात रहित पारदर्शी और लोगों के लिए आसानी से उपलब्ध सूचना-तंत्र का प्रस्ताव देकर अच्छी शुरुआत की है। यहाँ जैव-विविधता, कृषि व स्वास्थ्य संबंधी आँकड़े उपलब्ध कराए जा सकते हैं। मौसम संबंधी सूचना जल्द ही पूरे देश में प्रसारित की जा सकती है। आजीविका के साधन और संकटकालीन प्रबंधन के अतिरिक्त, यह देश के दूर-दराज़ इलाकों में ज्ञान के समृद्ध स्रोत का काम कर सकता है।

इंटरनेट व्यापक संभावनाओं के द्वार खोलता है। यह पाठ्यचर्या व सह-पाठ्यचर्या के संगत विषयों पर बच्चों के लिए इलेक्ट्रॉनिक प्लेटफॉर्म का कार्य कर सकता है। जहाँ शिक्षक और बच्चे प्रश्न पूछने, उत्तर देने, बहस करने के अतिरिक्त विशेषज्ञों से भी राय ले सकते हैं। स्कूली बच्चों के लिए इस तरह की व्यवस्था (हार्डवेयर और सॉफ्टवेयर को मिलाकर) विकसित की जा सकती है जिसमें वे अपने शारीरिक और अन्य लक्षणों (मसलन, तापमान, प्रकाश की तीव्रता, आर्द्रता आदि) को माप सकते हैं और उन्हें नियंत्रित करने का भी अवसर प्राप्त कर सकते हैं। ऐसी व्यवस्था कंप्यूटर का उद्योग, प्रयोगशाला, संप्रेषण आदि में भूमिका के बारे में भी परिचय दे सकती है।

20 सितम्बर 2004 को प्रक्षेपित किया गया एडूसैट(ई. डी.यू.एस.ए.टी.) एक संवादपरक उपग्रह आधारित दूरस्थ गुणवतापूर्ण (डाइरेक्ट-टू-होम-डी.टी.एच.) शिक्षा तंत्र है जो श्रव्य-दृश्य माध्यम से प्रसारण करता है। इसके कई क्षेत्रीय बीमों (Beams) के साथ जो कि भारत के विभिन्न भागों को समेटते हैं, वन-वे-वीडियो और टू-वे-ऑडियो जैसे टर्मिनल स्थापित कर संवादात्मक विज्ञान शिक्षा-कार्यक्रम चलाए जा सकते हैं। इसके माध्यम से विद्यार्थी, विशेषज्ञों से आवश्यक प्रश्न पूछ सकते हैं उनके भाषण सुन सकते हैं, और बहस, प्रश्न-उत्तर सत्र आदि आयोजित कर सकते हैं। कुछ चुने हुए स्कूलों में टॉक-बैक व रिसीव-ओनली टर्मिनल्स शुरू किए जा सकते हैं। जिनका पड़ोस के स्कूल भी उपयोग कर सकते हैं। एडूसैट की संभावनाओं के पूर्ण उपयोग के लिए आवश्यक हार्डवेयर उपलब्ध कराने होंगे और स्थानीय स्तर पर गुणवत्ता युक्त सॉफ़्टवेयर बनाने के लिए प्रयास करने होंगे।

विज्ञान संचार में सामुदायिक रेडियो (एफ.एम.) के महत्त्व को भी जानना ज़रूरी है। कुछ चुने हुए स्कूलों में निम्न-रेंज पर सामुदायिक रेडियो स्टेशन शुरू किए जा सकते हैं और स्थानीय ज़रूरतों के मुताबिक विद्यार्थियों को विज्ञान-कार्यक्रम बनाने व प्रसारित करने के लिए प्रोत्साहित किया जा सकता है। एडूसैट का ऑडियो (श्रव्य) चैनल इन कार्यक्रमों को दूर-दूर तक प्रसारित कर सकता है। इस गतिविधि में सहभागिता, विज्ञान सीखने के लिए बड़ी भूमिका निभा सकती है।

विगत वर्षों में विकसित हुए उपग्रह रेडियो ने देशव्यापी विज्ञान चैनल शुरू किए जाने की संभावना को जन्म दिया है। भारत जैसे देश में दूर-दराज़ के इलाकों तक यह विशिष्ट उपग्रह रेडियो रिसीवर के माध्यम से

पहुँच सकता है। यह डिजिटल उपग्रह संचार रेडियो तंत्र (भू-स्थिर) संचार उपग्रहों का उपयोग करता है, जो रेडियो प्रसारण और डायरेक्ट-टू-होम (डी.टी.एच) रेडियो के लिए प्रक्षेपित किए गए हैं (अभी यह विश्व अंतरिक्ष रेडियो के नाम से विख्यात है)। यह विश्व के सभी भागों में समाचारों, शैक्षणिक प्रसारणों और मनोरंजन तक अपनी खास 'ग्लोबल-रिले' क्षमता की वज़ह से पहुँचने की खासियत रखता है। चूँकि प्रसारण डिजिटल होता है, इसलिए 'डेटा-फाइल्स', 'साउंड-फाइल्स' और 'पिक्चर-फाइल्स' को कंप्यूटर में 'डाउनलोड' किया जा सकता है। इस तरह स्लाइड्स/विजुअल्स को भेजना या प्राप्त करना, उन्हें कंप्यूटर में सुरक्षित करना और भाषण के साथ प्रदर्शन के श्रव्य-दृश्य प्रसारण को कक्षा के पर्दे पर प्रोजेक्ट करना संभव हो गया है। टेलीफ़ोन लाइन के माध्यम से दोतरफ़ा (two-way) संवाद भी किया जा सकता है। सैटेलाइट रेडियो, विज्ञान शिक्षण में एक महत्त्वपूर्ण औज़ार (संसाधन) साबित हो सकता है।

आई. सी. टी. का उपकरण के रूप में उपयोग सावधानी से करना ज़रूरी है ताकि सामाजिक विषमता व अवसरों की असमानता को कम किया जा सके, बिना सोचे-विचारे बेतरतीब उपयोग उक्त विषमता व असमानता को बढ़ा भी सकते हैं। तकनीकी की बढ़ती पहुँच और समाज में लगातार सूचना-समाज के रूप में हो रहे परिवर्तन ने ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी है कि स्कूलों में आई. सी. टी. का उपयोग कर बच्चों को उक्त स्थिति से सामना करने व उसमें टिके रहने के लिए तैयार करने का प्रयास किया ही जाना चाहिए।

6.5 परीक्षा पद्धति

वर्तमान मूल्यांकन पद्धति को सुधारने के लिए राष्ट्रीय स्तर पर व्यापक प्रयास के अभाव में कक्षा में विज्ञान शिक्षण पर भी इसकी तानाशाही चलती रहेगी। इसकी अनुतीर्ण करने के प्रति जो कठोरता है उसने कई पीढ़ियों के बच्चों में भय व गाँठें उत्पन्न की हैं और उसके कारण मानवीय क्षमता की बरबादी होती रही है। इसने ऐसा रूप ले लिया है कि कुछ लोगों को छोड़कर, किसी में भी इसकी मूल धारणाओं को छूने या चुनौती देने की हिम्मत नहीं होती। इसके कैरियर व सामाजिक गतिशीलता के साथ संबंध ने नकारात्मक परिणामों को ही जन्म दिया है। परन्तु फिर भी हमें इस संबंध की उस गतिशीलता का सदुपयोग करना है जो यह हमारे शैक्षिक तंत्र को दे सकती है।

इसमें कोई शक नहीं है कि तमाम परीक्षा बोर्डों ने समय-समय पर अपनी मूल्यांकन प्रक्रिया में परिवर्तन किए हैं; लेकिन परीक्षा पद्धति ने ऐसा केंद्रीय स्थान बना लिया है कि उच्चतर स्तर पर योजना व पहलकदमी के बिना इसमें रैडिकल परिवर्तन संभव नहीं है।

ऐसा क्रातिकारी कदम उठाने में समय लग सकता है, इसे ध्यान में रखते हुए हमने कुछ तात्कालिक किस्म के सुझाव प्रस्तुत किए हैं, जिन्हें लागू करना अत्यन्त ज़रूरी है। पाठ्यचर्या में रचनात्मक, समस्या-समाधान परक, प्रायोगिक और प्रौद्योगिकी तत्त्वों को जगह दी जाए, इसके कुछ भाग मूल्यांकन प्रक्रिया से बाहर रखे जाएँ और शेष को औपचारिक सैद्धांतिक भाग के साथ समाविष्ट व एकीकृत कर दिया जाए। पाठ्यपुस्तक में दिए गए कार्यकलाप/प्रयोगों का 10वीं व 12वीं तक के लिए भी आंतरिक मूल्यांकन ही जारी रखा जाए। इससे 10वीं व 12वीं के बोर्ड के लिए केवल सैद्धांतिक भाग शेष रह जाएँगे। हमारे अनुसार सैद्धांतिक भाग के प्रश्न-पत्रों को भी ठीक से बनाया जाए और उसमें प्रयोग/तकनीकी आधारित प्रश्नों को जगह दी जाए। कुछ परीक्षा बोर्ड ऐसे सुधारों को अंजाम देने की सोच रहे हैं, जो शुभ संकेत है।

लेकिन अभी फिलहाल यदि बोर्ड परीक्षाएँ बनी रहेंगी, तो उनमें सुधार के क्या उपाय किए जाने चाहिए? वर्तमान में विज्ञान की परीक्षाओं में अभी दो मुख्य दोष हैं। पहला, विज्ञान का प्रश्न-पत्र विज्ञान की समझ को नहीं जाँचता। इसके प्रश्न औपचारिक होते हैं, जिन्हें रटकर जवाब देना आसान है, भले ही रटे हुए की समझ हो या न हो। शायद ही कोई नया प्रश्न पूछा जाता है, चुनौती-भरे और प्रयोग/तकनीकी-आधारित प्रश्न तो पूछे ही नहीं जाते। दूसरा, बोर्ड की परीक्षा वर्ष में एक बार नियत दिनों

में ली जाती है। यदि कोई विद्यार्थी किसी कारणवश परीक्षा में नहीं बैठ सका तो उसका पूरा साल बर्बाद हो जाता है। साथ ही बोर्ड परीक्षाओं को विद्यार्थी, शिक्षक, माता–पिता/अभिभावक, सामान्य जनता, सबने मिलकर इतनी अहमियत दे दी है कि विद्यार्थी को बड़ा तनाव भरा वातावरण झेलना पड़ता है । इसकी गंभीरता तो इसी बात से प्रकट होती है कि कई विद्यार्थी आत्महत्या तक कर लेते हैं । यही नहीं बल्कि ये परिस्थितियाँ ज़ालसाजी (प्रश्न पत्र का आउट होना, परीक्षा के दौरान नकल) तथा अन्य गलत अभ्यासों को भी जन्म देती हैं।

अब तक बाह्य प्रश्न–पत्रों की गुणवत्ता को सुधारने के लिए भी प्रयास किए गए जो विफल साबित हुए। कारण बोर्ड परीक्षाएँ खुद सामाजिक दवाब के चंगुल मे फँसी हैं। ऐसी परिस्थिति, जब अंकों में आधे प्रतिशत का इधर–उधर होना कैरियर को प्रभावित कर सकता है, में किसी भी तरह का ऐसा सुधार जो विद्यार्थी के हित में उलट-फेर लाएगा (अच्छे अंक प्राप्त करने में) को जनता का विरोध झेलना ही होगा। साथ ही प्रश्न–पत्र में थोड़े से सुधार को यदि सभी बोर्ड एक साथ लागू नहीं करते तो इससे भी विभिन्न बोर्ड के विद्यार्थी के हितों के अनुपात में टकराव होगा। क्योंकि एक साथ सभी बोर्ड किसी सुधार को अपना लेंगे, असंभव है। ऐसे में राष्ट्रीय स्तर के बोर्ड नेतृत्व सँभाल सकते हैं। अचानक सुधार तो संभव नहीं है, लेकिन धीरे–धीरे प्रश्न–पत्र की गुणवत्ता को ज़रूर ठीक किया जा सकता है। वर्तमान की कठिन परिस्थितियों और बाधाओं में भी अनावश्यक कठिनाई के स्तर को बढ़ाए बिना ही बोर्ड के प्रश्न–पत्रों को अर्थवत्ता व गुणवत्ता प्रदान की जा सकती है।

जहाँ तक दूसरी समस्या की बात है वह है सभी विषयों की परीक्षा का साल में एक ही बार होना। शायद इसे नयी तकनीकी के माध्यम से सुधारा जा सकता है। बोर्ड ऑनलाइन जाँच–परीक्षाएँ शुरू कर सकते हैं जिसमें विभिन्न समयों में विभिन्न विषयों की परीक्षाओं में बैठने की छूट विद्यार्थियों को दी जाए। इससे परीक्षा–जनित तनाव कम होगा। यह समाधान भी तत्काल लागू करना संभव नहीं, कारण कई तरह की पद्धतिगत व तकनीकीगत समस्याएँ हैं, लेकिन तमाम बोर्ड इस दिशा में सोचना शुरू कर दें तो इसे कार्यान्वित करने की सारी बाधाएँ दूर की जा सकती हैं।

6.5.1 10+2 के बाद प्रवेश परीक्षाएँ

इंजीनियरिंग व मेडिकल के लिए प्रवेश परीक्षाओं में समस्या–समाधान व आलोचनात्मक क्षमता की जाँच होती है। यही वजह है कि +2 स्तर के भारतीय विद्यार्थी अंतर्राष्ट्रीय स्तर की प्रतियोगिताओं मसलन, ओलंपियाड्स में अच्छा प्रदर्शन करते हैं। लेकिन ये परीक्षाएँ सामाजिक विषमता को बढ़ाने में माध्यम का काम कर रही हैं। पारंपरिक बोर्ड परीक्षाओं और इन परीक्षाओं मसलन आई. आई.टी. जे.ई.ई. के प्रश्न–पत्रों के लिए ज़रूरी अकादमिक क्षमताओं में (भले ही पाठ्यक्रम लगभग एक ही हों) बहुत बड़ा फ़ासला होता है और यही वजह है कि पूरे देश में कोचिंग उद्योग फल–फूल रहा है, जो इस फासले को पाटने में मदद करते हैं। इन कोचिंग संस्थानों की ऊँची फ़ीस ग्रामीण/गरीब विद्यार्थियों के बूते की बात नहीं होती और ऐसे में वे इंजीनियरिंग/मेडिकल संस्थानों की शिक्षा से वंचित रह जाते हैं। बोर्ड परीक्षा और इन प्रवेश–परीक्षाओं के लिए जो तैयारियाँ की जाती हैं उनके बीच का फ़ासला तभी कम हो सकता है, जब स्कूल रट्टा मारकर सीखने की प्रवृत्ति को खत्म करने और समस्या–समाधान पर ज़ोर डालने के लिए उचित पहलकदमी करे। ऐसा सभी स्कूलों में होना चाहिए, इसके लिए हम यह तर्क दें कि समता प्रदान करना एक ऐसा सरोकार है जिसे उच्च प्राथमिकता मिलनी चाहिए (देखें 'समता और विज्ञान शिक्षा)।

10+2 के बाद होने वाली प्रवेश परीक्षाओं के साथ एक और समस्या है। देश भर में इंजीनियरिंग, मेडिकल, इनफॉरमशेन टैक्नोलॉजी आदि के लिए +2 के बाद कई प्रवेश परीक्षाएँ आयोजित होती हैं। उदाहरण के लिए इंजीनियरिंग में, आई. आई. टी.–जे.ई.ई. और ए. आई. ई. ई.ई. के अलावा राज्य स्तर पर राज्यों की अपनी प्रवेश परीक्षाएँ हैं। मेडिकल में भी ए.आई. आई. एम.एस.,जे. आई.पी.एम.ई.आर,ए.एफ एम.सी. आदि के अलावा राज्य

स्तरीय प्रवेश परीक्षाएँ ली जाती हैं। और भी कुछ परीक्षाएँ हैं, मसलन एन. टी. एस. एस. के.वी.पी. वाई, ओलंपियाड आदि। और देश भर में कुछ निजी संस्थानों की अपनी परीक्षाएँ होती हैं, मानो जो हो रहा है, वह अपर्याप्त हो।

किसी भी परीक्षा में कैसा प्रदर्शन रहेगा, इसके प्रति विद्यार्थी निश्चित नहीं होता, इसलिए अधिकांश विद्यार्थी कम से कम आधी दर्ज़न परीक्षाओं में ज़रूर भाग लेते हैं ताकि निकलने का अवसर ज़्यादा हो। हालाँकि इस क्षेत्र में अध्ययन नहीं किया गया है, लेकिन कई परीक्षाओं में साम्यता पाई गई है। उदाहरण के लिए, जो विद्यार्थी एन. टी. एस. या ओलंपियाड के लिए चुने जाते हैं, अमूमन आई. आई. टी.-जे. ई. ई., मेडिकल में भी पास करते हैं और कई दूसरी परीक्षाओं में भी। इससे यह संकेत मिलता है कि प्रवेश परीक्षाओं की संख्या घटाकर +2 के बाद विद्यार्थियों के सिर से बोझ कम किया जा सकता है। यह इसलिए भी ज़रूरी है कि प्रवेश परीक्षाओं के लिए तैयारी करने में जुटे विद्यार्थी की बोर्ड परीक्षा के प्रति दिलचस्पी नहीं रहती और उनके प्रदर्शन पर भी नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

6.5.2 राष्ट्रीय जाँच सेवा (नेशनल टैस्टिंग सर्विस)

हमारे अनुसार, समय आ गया है जबकि परीक्षा सुधार को राष्ट्रीय मिशन के रूप में लिया जाए और शिक्षकों, वैज्ञानिकों व शिक्षाविदों को इस मिशन को कामयाब करने के लिए एक मंच पर लाया जाए। पहलकदमी होनी चाहिए राष्ट्रीय जाँच सेवा को शुरू करने की शुरुआत में इसे उच्च माध्यमिक स्तर तक ही सीमित रखा जा सकता है। यदि यह संभव हो जाए तो काफ़ी सकारात्मक परिणाम सामने आएँगे। पहला, यह मूल्यांकन के आधुनिक तरीके (जैसे ऑनलाइन जाँच परीक्षा) अपनाकर विद्यार्थी को अपनी मर्जी के दिन/समय परीक्षा देने के लिए छूट दे सकता है। साथ ही विद्यार्थी अलग-अलग विषयों के लिए अलग-अलग समय पर परीक्षा दे सकता है और बाद में सारे क्रेडिट्स जोड़े जा सकते हैं। इससे विद्यार्थियों में परीक्षा-जनित तनाव ज़रूर कम होगा, ऐसा पाया भी गया है। दूसरा, एन. टी. एस. प्रवेश और प्रतियोगिता परीक्षाओं की बहुलता को कम करेगा। तीसरा और सबसे महत्त्वपूर्ण होगा, विद्वत् उपलब्धि के अलावा रचनात्मक, खोजी-प्रवृत्ति, प्रायोगिक/तकनीकी कुशलता के मूल्यांकन के लिए एन. टी. एस. आवश्यक साधन/तरीके के विकास पर शोध कर सकेगा। तब विद्यार्थियों में व्यापक योग्यताओं और क्षमताओं की जाँच की जा सकेगी जैसा कि आज नहीं हो पा रहा है। यह स्पष्ट होना चाहिए कि यह प्रस्ताव एन.पी.ई. 1986 में प्रस्तावित नेशनल टेस्टिंग सर्विस के समान नहीं है।

लेकिन हम इस बात पर भी बल देना चाहेंगे कि एन.टी. एस. जिसकी बात यहाँ की जा रही है, तभी शुरू किया जाना किया चाहिए, जब परीक्षा सुधार को एक मिशन के रूप में लेने की प्रतिबद्धता हो और इसके लिए ज़रूरी कोश उपलब्ध हो। इसे कोश के साथ-साथ उच्च क्षमता प्राप्त मानवीय संसाधन की भी ज़रूरत पड़ेगी। इसे शुरू करने के पहले इसके ऑपरेशन डिटेल्स (यानी योजना) पर गंभीरतापूर्वक काम करना होगा। साथ ही तमाम राष्ट्रीय/राज्य-स्तरीय संस्थानों में इसे लागू करने के प्रति सहमति व प्रतिबद्धता होनी चाहिए तथा अपनी प्रवेश परीक्षाओं व बोर्ड परीक्षाओं को छोड़ने की तत्परता भी अन्यथा, यह सकारात्मक के बदले नकारात्मक ही साबित होगा, कारण परीक्षाओं के बोझ के तले दबे विद्यार्थियों के लिए यह एक और बड़ा बोझ बन जाएगा।

6.6 पाठ्य सहगामी/पाठ्यचर्येतर गतिविधियाँ

विज्ञान शिक्षा का उद्देश्य योग्यता के साथ-साथ खोजी-प्रवृत्ति और रचनात्मकता को भी बढ़ावा देना है। भारत में विज्ञान शिक्षा योग्यता का विकास तो कर पाती है, लेकिन खोजी-अंतर्दृष्टि और रचनात्मकता को विकसित नहीं कर पाती। यह इस तथ्य से पता चलता है कि अधिकांश भारतीय विद्यार्थी औपचारिक/विद्वत् जाँच-परीक्षाओं में अच्छा प्रदर्शन करते हैं, लेकिन कुछ ही अच्छे शोधकर्ता या मूल चिंतक के रूप में उभर पाते हैं । जहाँ तक एक औसत विज्ञान के विद्यार्थी की बात है, वह इनमें से कुछ भी नहीं विकसित कर पाता।

पाठ्यचर्या में आदान-प्रदान भर से उक्त लक्ष्य

हासिल नहीं होने वाले। खासकर हमारी शिक्षा व्यवस्था में जिस पर परीक्षा-तंत्र का अत्यधिक दबाव है। ऐसे में सीखने के अनौपचारिक तरीके महत्त्वपूर्ण हो जाते हैं। ये औपचारिक चैनल ही हैं, जिनके माध्यम से रचनात्मकता विकसित हो सकती है। इनके माध्यम से ऐसा वातावरण तैयार किया जा सकता है, जिसमें विद्यार्थी खोजपरक परियोजनाएँ कर सकें, नए प्रकार के मॉडल बना सकें या मशीन, गैजिट लेकर कुछ भी कर सकें, कई स्कूलों में इस तरह के कार्यकलाप विज्ञान प्रदर्शनी/विज्ञान परियोजनाओं के माध्यम से किए जाते हैं। लेकिन यह महज वार्षिक त्योहार का रूप लेकर सीमित रह गए हैं, तथापि यही एक मात्र अवधि होती है जब विद्यार्थी और शिक्षक अनौपचारिक रूप से जुड़ते हैं और जो कक्षा के बाहर नवाचार व रचनात्मकता के लिए प्रेरक का काम करती है। इसमें हमें एक बड़ी संभावना नज़र आती है और इसलिए हमारा कहना है कि इस कार्यकलाप को विस्तार देकर देशभर में विज्ञान आंदोलन सा लाया जाना चाहिए।

इस दिशा में कदम रखने के लिए ज़रूरी है कि उचित फोरम सा तैयार किया जाए। मसलन स्कूलों में मूलभूत सुविधाओं (कुछ औज़ार, मापक और एक पुस्तकालय) को उपलब्ध करवाकर विज्ञान क्लब बनाए जा सकते हैं। इस क्लब की गतिविधियों में व्यक्तिगत परियोज़नाओं से लेकर सामूहिक परियोजनाएँ तक शामिल की जा सकती हैं। स्कूलों को इसके लिए उचित कोश उपलब्ध कराना ज़रूरी है, साथ ही शिक्षकों को विद्यार्थियों को निर्देश देने आदि की अकादमिक छूट होनी चाहिए। सहायता के लिए स्थानीय स्तर पर संदर्भ-व्यक्ति और विशेषज्ञ उपलब्ध कराए जा सकते हैं। शिक्षकों को इसके लिए प्रेरित करना होगा कि वे विद्यार्थियों को इस तरह के कार्यकलापों के प्रति उत्साहित करें। इसलिए प्रशिक्षण के दौरान उन्हें रचनात्मक विज्ञान-जनित कार्यकलापों की महत्ता से वाकिफ कराना व उन्हें विद्यार्थियों से कैसे करवाया जाए, इसका प्रशिक्षण मिलना चाहिए। इसके लिए शिक्षकों के लिए निर्देशिका तैयार की जा सकती है, जिसमें महत्त्वपूर्ण सॉफ़्टवेयर, श्रव्य/दृश्य प्रोग्राम, लर्निंग मॉड्यूल्स, एक्टिविटी किट्स आदि के बारे में और इन्हें विकसित करने वाले नवाचारी संगठनों के बारे में सूचनाएँ उपलब्ध हों।

विज्ञान क्लब को ऐसे क्लबों के राष्ट्रीय नेटवर्क से जोड़ा जा सकता है और एक साथ ही यह कुछ खास अवसरों पर, मसलन सूर्य/चंद्र ग्रहण, राष्ट्रीय विज्ञान दिवस इत्यादि, शिक्षकों के निर्देशन में आम जनता को विज्ञान/प्रौद्योगिकी के बारे में बताने का महत्त्वपूर्ण कार्य कर सकते हैं। हम ज़ोर डालकर कहते हैं कि यह गतिविधि किसी भी प्रकार की मूल्यांकन प्रक्रिया से बाहर ही रखी जाए। लेकिन इन गतिविधियों में विद्यार्थी की उपलब्धि व शिक्षक के योगदान को उचित मान्यता देनी चाहिए, ताकि औरों को प्रोत्साहन मिल सके।

स्कूलों को स्थानीय/राज्य/राष्ट्रीय स्तर पर चिल्ड्रेंस साइंस कांग्रेस (नेशनल काउन्सिल फॉर साइंस एंड टेक्नोलॉजी कम्यूनिकेशन एन.सी.एस.टी.सी द्वारा आयोजित) और विज्ञान प्रदर्शनियों (एन.सी.ई.आर.टी और नेशनल काउंसिल फॉर साइंस म्यूज़ियम द्वारा क्रमशः राष्ट्रीय/क्षेत्रीय स्तर द्वारा आयोजित) में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए । हमारा सुझाव है कि ये संस्थाएँ हाथ से हाथ मिलाकर, अपने संसाधनों और अनुभवों को साझा करते हुए व्यापक स्तर के 'विज्ञान और प्रौद्योगिकी मेले' का आयोजन करें, जिसमें छोटे स्तर के मेले भी शामिल हों।

यह बात महत्त्वपूर्ण है कि इन गतिविधियों को स्कूली पाठ्यचर्या में हाशिए पर नहीं रखा जाए। वस्तुतः आज के परीक्षा के प्रकोप से ग्रसित शिक्षा व्यवस्था में खोजी-प्रवृत्ति/रचनात्मकता को बढ़ावा देने का यही एकमात्र उपाय दिखता है। इसलिए दृष्टिकोण में ही परिवर्तन लाना ज़रूरी है ताकि इन गतिविधियों को सरकारी सहायता व विद्यार्थियों, शिक्षकों, शिक्षक संगठनों, गैर सरकारी संगठनों आदि की भागीदारी से ज़ोरदार समर्थन मिले। हमें ध्यान रखना होगा कि ये गतिविधियाँ वार्षिक उत्सवों में बदलकर सीमित न रह जाएँ। परियोजनाओं की गुणवत्ता में सुधार के लिए बड़े प्रयास किए जाने चाहिए ताकि यह निश्चित हो सके कि वे अपने चरित्र में खोजपरक/पड़तालपरक हैं और रचनात्मकता व नए तरह से सोचने की माँग करते हैं।

6.7 शिक्षक सशक्तीकरण

शिक्षक के सशक्तीकरण के मामले पर लंबे समय से बहस व विवाद होते रहे हैं। वर्तमान में शिक्षकों को जिस तरह तैयार किया जाता है, उससे विज्ञान-शिक्षकों का सबलीकरण नहीं के बराबर हुआ है । इसलिए शिक्षक-सबलीकरण की योजनाओं व चल रहे कार्यक्रमों की संरचना पर पुनर्विचार की ज़रूरत है। नयी राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा के अनुसार इस मामले पर फिर से प्रयास करने को प्राथमिकता मिलनी चाहिए। लक्षित विज्ञान-पाठ्यचर्या को प्राप्त करने के लिए यह अति महत्त्वपूर्ण शर्त है।

शिक्षकों के प्रोत्साहनपरक स्तर को ऊँचा उठाना बहुत बड़ी चुनौती साबित हुई है। हालाँकि इसका कोई बना-बनाया समाधान नहीं है, लेकिन हमारा विश्वास है कि यह न-सुलझने लायक समस्या नहीं है। व्यवस्थित सुधार, पेशे में भर्ती के लिए अपेक्षाकृत अच्छी योजनाएँ, वेतन में वृद्धि, दूसरी तरह की भौतिक सुविधाएँ और उचित सहायता-तंत्र वर्तमान परिस्थिति में सुधार ला सकता है तथा सही व्यक्तियों को इस पेशे के लिए आकर्षित कर सकता है। सशक्तीकरण व आज़ादी नहीं होने की वज़ह से ही विश्वास व प्रोत्साहन में कमी होती है। ऊपर से अधिकारियों का दवाब, निर्णय लिए जाने का टॉप-डाउन मॉडल, जिम्मेदारी के नाम पर उनसे हद से ज़्यादा की उम्मीद आदि इनकी समस्याओं को और ज़्यादा बढ़ा रहे हैं।

शिक्षक-प्रशिक्षण की प्रक्रिया में पूर्णतः परिवर्तन लाना ज़रूरी है मसलन, पाठ्यक्रम का आधुनिकीकरण, उपयुक्त प्रयोगशाला का विकास व उच्च योग्यता प्राप्त प्रशिक्षकों की नियुक्ति आदि। प्रशिक्षकों को विज्ञान पढ़ाने का निश्चित रूप से कुछ अनुभव होना चाहिए। वर्तमान शिक्षक-प्रशिक्षण की पाठ्यचर्या में सिद्धांत को ज़्यादा महत्त्व दिया गया है। विज्ञान के शिक्षकों की पाठ्यचर्या में सुधारों की ज़रूरत है उनमें से कुछ निम्न हैं:

- विज्ञान के शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए ऐसी पाठ्यचर्या की ज़रूरत है जो समय के साथ उत्पन्न प्राथमिकताओं व चुनौतियों के साथ कदम से कदम मिलाकर चल सके। स्कूल में विज्ञान पाठ्यचर्या में किया गया कोई भी परिवर्तन, शिक्षक प्रशिक्षण पाठ्यचर्या में भी परिवर्तन लाए, यह ज़रूरी है। विज्ञान शिक्षकों की सेवापूर्व शिक्षा की कमियों को सेवारत कार्यक्रमों के द्वारा पूरा नहीं किया जा सकता।
- विज्ञान शिक्षक-शिक्षा पाठ्यचर्या को आलोचनात्मक कौशल और उन योग्यताओं के मानदंड पर आधारित होना चाहिए, जिसकी उम्मीद विज्ञान के शिक्षक से की जाती है।
- इसे प्रक्रिया व विधिपरक कुशलता पर ज़ोर देना होगा और साथ ही विज्ञान की ऐतिहासिक व विकासात्मक रूपरेखा के बारे में सूचना भी देनी होगी।
- एकीकृत शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम के लिए प्रयास ज़रूरी है जिनकी अवधि चार-पाँच साल हो।

पेशे के दौरान जो प्रशिक्षण दिया जाता है उसकी गुणवत्ता पर भी प्रश्न उठाया जा सकता है। हम सुझाव देते हैं कि विज्ञान-शिक्षकों को पेशे के दौरान दी जाने वाली प्रशिक्षण आवश्यकता के अनुकूल होना चाहिए। आवश्यकताओं को जानने के लिए नए-नए तरीके विकसित करने पड़ेंगे और आवश्यकता क्या है इसकी पड़ताल लगातार होती रहनी भी चाहिए। प्रत्येक विज्ञान शिक्षक को आमने-सामने प्रशिक्षण देना संभव नहीं है, समय और संसाधन दोनों की अपनी सीमाएँ हैं। इसलिए दूरस्थ-शिक्षा द्वारा शिक्षकों को प्रशिक्षित करने का कार्यक्रम शुरू किया जाना चाहिए। प्रत्येक कक्षा स्तर के लिए ऑन लाइन पाठ्यक्रम और वेबसाइट्स एक दूसरा सक्षम विकल्प है।

शिक्षकों को एक साल में 60 दिनों की छुट्टी मिलती है। इस अवधि को उनके पेशेवराना विकास में लगाया जा सकता है। पेश के दौरान के प्रशिक्षण के अधिकांश कार्यक्रम इस अवधि में किए जाने चाहिए। और इस छुट्टी को बाद में छुट्टियाँ देकर पूरा किया जा सकता है। शिक्षकों को खुद ही अपनी तरफ़ से अपने पेशेवराना विकास के लिए पहलकदमी करनी होगी।

शिक्षकों के सशक्तीकरण के लिए एक महत्त्वपूर्ण

तरीका है उनको आपस में संवाद करने के लिए उन्मुख करना। विद्यालय के अंदर शिक्षक सहयोगियों के बीच अकादमिक विमर्श और बातचीत की प्रक्रियाओं को स्थापित किया जाना चाहिए। अभी शिक्षकों के बीच संवाद गप्प-शप्पनुमा ही होता है, जिसमें गैर अकादमिक बातें ही की जाती हैं। विज्ञान के शिक्षक आपस में मिलकर फोरम बना सकते हैं और अकादमिक मुद्दों पर बहस वगैरह शुरू कर सकते हैं। सी.आर. सी. और बी.आर.सी. इस प्रक्रिया से जुड़ते हुए उसको आगे बढ़ा सकते हैं। शिक्षकों के लिए मैनुअल, विज्ञान-शिक्षकों के लिए पत्रिकाएँ, सेमिनार, प्रदर्शनी, विज्ञान मेला, वैज्ञानिकों और शिक्षाविदों से संवाद का अवसर आदि जैसी गतिविधियाँ भी शिक्षकों के सशक्तीकरण में सहायक हो सकते हैं।

शिक्षक सशक्तीकरण एक ऐसा व्यापक सुधार कार्यक्रम है, जिसके परिप्रेक्ष्य में ही दूसरे सुधार कार्यक्रमों एवं इस आधार पत्र में दी गई संस्तुतियों को अवस्थित होना चाहिए। क्योंकि यदि उनका सशक्तीकरण नहीं होगा वे किसी भी नयी पहलकदमी/धरणा के प्रति लापरवाही/प्रतिरोध का रवैया ही बरतेंगे। भले ही उक्त पहलकदमी/धारणा शिक्षाविदों के लिए कितनी ही महत्त्वपूर्ण क्यों न हो?

6.8 समता और विज्ञान शिक्षा

किसी भी जनतांत्रिक समाज की तरह हमारे समाज का भी प्रमुख उद्देश्य समता है। लेकिन, अभी तक हमारी व्यवस्था 'सबके लिए' गुणवत्तापूर्ण विज्ञान शिक्षा उपलब्ध कराने में असफल रही है। अधिकांश विद्यार्थी स्कूल से 'वैज्ञानिक-स्तर पर अमूमन निरक्षर' ही बाहर आते हैं या कुछ ही दिनों में हासिल की गई साक्षरता को भूल जाते हैं। इसकी वजह है, उनमें से अधिकांश विद्यार्थियों का विज्ञान शिक्षा के मामले में सुविधावंचित स्थिति में होना। इनमें लड़कियाँ, ग्रामीण इलाकों के बच्चे, आदिवासी व सामाजिक-आर्थिक स्तर पर पिछड़े तबके, चाहे वे गाँव में हों या शहर में, के बच्चे शामिल हैं। सीखने की कठिनाइयों और शारीरिक चुनौतियों का सामना कर रहे बच्चे हैं। इस तरह के सुविधावंचित समूहों के बच्चों को सिखाना ज़्यादा गंभीरता व ध्यान की माँग करता है। व्यवस्था और खासकर शिक्षकों को इन विविध तबकों के बच्चों के प्रति जागरूक व संवेदनशील होने की ज़रूरत है।

विज्ञान शिक्षा का उपयोग सामाजिक-आर्थिक विषमता को दूर करने के लिए एक साधन के रूप में होना चाहिए। तमाम पूर्वाग्रहों के साथ-साथ जेंडर, जाति, धर्म एवं क्षेत्र के आधार पर विद्यमान पूर्वाग्रहों को खत्म करने में इसे सहायक होना चाहिए। यह विद्यार्थियों में प्रश्न पूछने की क्षमता को जगा सकती है। ऐसे प्रश्न उन विश्वासों, धारणाओं और व्यवहारों पर हों जो सामाजिक असमानता को परिपोषित करते हैं।

यहाँ अधिकांश विद्यार्थी प्रथम पीढ़ी के सीखने वाले होते हैं। साथ ही व्यापक निरक्षरता और निम्नस्तरीय विद्यालयी शिक्षा की वजह से शिक्षा पर शिक्षित या साक्षर को समाज व परिवार से अलग करने का आरोप लगता है। जबकि पाठ्यचर्या को ऐसा बनाया जा सकता है, जो स्थानीय परिवेश से शिक्षा को जोड़े और बच्चों के सीखने में उक्त समाज के युवक/युवतियों को संलग्न करे। स्थानीय प्रौद्योगिकी शिक्षा भी बच्चे को समाज से जोड़ने में सहायक हो सकती है। साथ ही संदर्भों, सामग्रियों व चित्रों के चुनाव में संवेदनशीलता भी उक्त के असमानता को कम करने में सहायक होगी। सभी बच्चे स्कूल जाना शुरू कर दें, यही पर्याप्त नहीं है। व्यवस्था को ऐसे उपाय करने होंगे जो सभी बच्चों को उचित गुणवत्ता वाली शिक्षा तक पहुँचा पाना संभव करें (यहाँ विज्ञान शिक्षा के संबंध में) पहुँच और गुणवत्ता के जुड़वाँ उद्देश्यों को साथ-साथ चलना चाहिए न कि एक के बाद दूसरा।

6.8.1 ग्रामीण-शहरी फ़ासले को पाटने की ज़रूरत

शिक्षा, खासकर विज्ञान शिक्षा के मामले में ग्रामीण और शहरी बच्चों के बीच बहुत बड़ी खाई है। इसके कई कारण हैं, लेकिन प्रमुख कारण हैं**:** ग्रामीण इलाके में ढाँचागत सुविधाओं का अभाव, अपर्याप्त सहायक-तंत्र, सूचना का अभाव और अन्य संसाधनों की कमी। साथ ही तमाम शैक्षणिक इनपुट (सहायता)में व्यवस्था का शहर की ओर ज़्यादा झुकाव। हमने पहले ही जोर डालकर कहा है कि एक निश्चित न्यूनतम संरचना और अकादमिक

सहायता अच्छी विज्ञान शिक्षा को संभव बनाने की अनिवार्य शर्त हैं (अनुभाग 6.1देखें)

विषयवस्तु के स्तर पर हमें ध्यान देना होगा कि पाठ्यचर्या में ग्रामीण जीवन-शैली का समावेश हो, जोकि संदर्भीकृत पाठ्यचर्या के माध्यम से आसानी से किया जा सकता है। मुख्य मुद्दे मसलन भोजन और पानी के बारे में, ग्रामीण कृषि अर्थव्यवस्था को ध्यान में रखकर ही पढ़ाया जाना चाहिए न कि संदर्भ से परे अलग विषय के रूप में। ग्रामीण स्तर पर जितनी तरह के पेशे प्रचलित हों, जिनमें विविध व्यापारों के उपकरण एवं तकनीकी शामिल हैं, को पाठ्यचर्या में जगह मिलनी चाहिए। एक ''ग्रामीण स्तर का विज्ञान-आंदोलन'' शुरू किया जा सकता है, जिसमें प्रखंड या पंचायत स्तर पर विविध विज्ञान-कार्यक्रम जैसे विज्ञान प्रदर्शनी, विज्ञान कैंप आदि आयोजित किए जा सकते हैं। ग्रामीण-प्रौद्योगिकी से संबंधित प्रदर्शनी भी लगाई जा सकती हैं। राज्य स्तरीय शिक्षा विभाग अपनी एजेंसी (जैसे बी.आर.सी. और सी.आर.सी.) और यदि एन.जी.ओ. का साथ संभव हो तो, उनके साथ मिलकर ग्रामीण बच्चों के लिए छुट्टी के दिनों में विज्ञान शिविर आयोजित कर सकते हैं। इसी तरह 'ग्रामीण रेडियो स्टेशन' ग्रामीण बच्चों को 'रेडियो-विज्ञान कार्यक्रम' में भाग लेने का अवसर दे सकता है। ऐसे प्रयास किए जाने चाहिए, जो विज्ञान शिक्षा को उन बच्चों/विद्यार्थियों के लिए भी संभव बना सकें जो किसी कारणवश स्कूल नहीं आ पाते। ग्रामीण रेडियो विज्ञान कार्यक्रम, आंशिक स्तर पर ही सही, इस उद्देश्य को प्राप्त कर सकते हैं।

ग्रामीण स्कूलों के बच्चे विज्ञान की पढ़ाई 10वीं तक मातृभाषा/स्थानीय भाषा में ही करते हैं। अधिकांश जगहों पर 10+2 के स्तर पर विज्ञान-शिक्षण का कार्य अंग्रेज़ी माध्यम में ही होता है। ये विद्यार्थी पाठ्यपुस्तकों, शिक्षकों, संदर्भ ग्रंथों आदि के अभाव से जूझते हैं, जो इनके द्वारा झेली जाने वाली समस्याओं में से महज कुछ है। यह ग्रामीण बच्चों के घाटे की स्थिति होती है। ग्रामीण बच्चे अंग्रेज़ी में दक्षता प्राप्त कर सकें, इसलिए विशेष/अतिरिक्त प्रयास किए जाने ज़रूरी हैं। साथ ही +2 के स्तर पर विज्ञान की पढ़ाई स्थानीय भाषा में हो इसका प्रयास होना चाहिए, लेकिन इसके साथ उन संसाधनों को उपलब्ध कराना ज़रूरी है जो उक्त प्रयास को सफल बना सकें। विज्ञान में रोज़गार और शिक्षण संबंधी सूचनाओं के मामले में ग्रामीण बच्चों को जानकारी नहीं होती है। हरेक पंचायत में सहायता केंद्र खोले जा सकते हैं जो बच्चों को इस बावत सूचना प्रदान करें। विज्ञान की प्रतियोगिता परीक्षाओं के मामले में भी ग्रामीण बच्चों की सहायता के लिए इसी प्रकार के केंद्र शुरू किए जा सकते हैं।

6.8.2 जेंडर और विज्ञान शिक्षा

अध्ययनों से ज्ञात हुआ है कि एक ही कक्षा में होने के बावजूद लड़कियों को लड़कों की अपेक्षा अलग तरह की विज्ञान की शिक्षा दी जाती है। दूसरों की तरह विज्ञान की पाठ्यपुस्तकें व शिक्षक भी जेंडर-जनित पूर्वाग्रहों से ग्रस्त होते हैं। विज्ञान-शिक्षक के मन में भी जेंडर की प्रचलित छवि जड़ जमाए होती है। पाठ्यपुस्तकों और कक्षा से जेंडर पूर्वाग्रह खत्म करने के लिए ज़्यादा गंभीर प्रयास करने की ज़रूरत है। सेवापूर्व व सेवा के दौरान शिक्षकों में जेंडर के प्रति जागरूकता लाना जेंडर पूर्वाग्रह-मुक्त विज्ञान शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए ज़रूरी है। साथ ही ज़्यादा-से-ज़्यादा लड़कियाँ विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में आएँ इसके लिए उन्हें और उनके माता-पिता/अभिभावकों को प्रोत्साहित करना ज़रूरी है।

इस बात का भरपूर खयाल रखना ज़रूरी है कि विज्ञान और प्रौद्योगिकी में स्त्रियों के योगदान को पाठ्यचर्या में जगह मिले। शिक्षकों को कक्षा में एकसमान व्यवहार करना चाहिए ताकि लड़कियों को विज्ञान की अच्छी शिक्षा मिल सके। शिक्षक, शिक्षक-प्रशिक्षक, पाठ्यपुस्तक-लेखक और शैक्षणिक-प्रशासकों को जेंडर से संबंधित मुद्दों के प्रति जागरूक और जिम्मेदार बनाना ज़रूरी है। इस बात पर अध्ययन होने चाहिए कि स्कूल में कक्षा के भीतर व कक्षा के बाहर जेंडर पूर्वाग्रह कैसे काम करते हैं। इन अध्ययनों से मिलने वाली दिशा और दृष्टि से शिक्षकों को भी अवगत कराया जाना चाहिए।

6.8.3 हाशिए पर अवस्थित अन्य तबकों की ज़रूरतें

कुछ विद्यार्थी ऐसे समूहों से आते हैं जिनकी ज़रूरतें

विशेष होती हैं। यह एक विशेषज्ञता वाला क्षेत्र है, इसमें इन समूहों के बच्चों को पढ़ाने के लिए तरीकों पर विचार करते समय इनके मामलों के विशेषज्ञों की सलाह लेनी ज़रूरी है। व्यवस्था को इन बच्चों के लिए पर्याप्त संसाधनों को सहायक-तंत्र के रूप में विकसित करना चाहिए ताकि वे अर्थपूर्ण ढंग से विज्ञान सीख सकें और अपनी अक्षमताओं से मुक्त हो सकें। 'फ़ोकस समूह' के द्वारा इन समूहों के मामले में जो सुझाव प्रस्तुत किए गए हैं, उनके आधार पर इन बच्चों की 'विज्ञान शिक्षा की ज़रूरतों' पर उचित पहलकदमी की जा सकती है। हम पुनः याद दिलाते हैं कि स्कूल छोड़ देने वाले बच्चों की बड़ी संख्या व्यवस्था की कमियों को झलकाती है। इसलिए इस ओर व्यवस्था की स्पष्ट भूमिका और जिम्मेदारी बढ़ जाती है।

7. सुझाव

सुविधा के लिए हम इस रिपोर्ट के मुख्य सुझावों का सारांश रूप सामने रख रहे हैं। हमारा ज्यादा ज़ोर उन मुद्दों पर है जो या तो नए हैं या जिन्होंने इस रिपोर्ट में अपेक्षाकृत ज़्यादा ध्यान खींचा। इन सुझावों में से कुछ सिद्धांतों और ढाँचों की बात करते हैं जबकि कुछ निर्देशात्मक स्वभाव के हैं और अमल करने की माँग करते हैं। इन सुझावों के लिए आवश्यक स्पष्टीकरण रिपोर्ट के मुख्य भाग में है।

7.1 विज्ञान की आदर्श पाठ्यचर्या का मानदंड

हम विज्ञान की उस शिक्षा को अच्छा मानते हैं जो बच्चों के प्रति, जीवन के प्रति और विज्ञान के प्रति ईमानदार हो। इस सामान्य व स्वाभाविक निरीक्षण से विज्ञान-पाठ्यक्रम की वैधता के छहों मूल मानदंड (संज्ञानात्मक, विषयवस्तु, प्रक्रिया, ऐतिहासिक, पर्यावरणीय एवं नैतिक) सामने आते हैं जिनके बारे में विस्तार से चर्चा की गई। विज्ञान शिक्षा के सामान्य लक्ष्य (निहितार्थ) इन्हीं मानदंडों से निकले हैं।

7.2 विभिन्न स्तरों के अनुसार विज्ञान पाठ्यचर्या

सामान्य सरोकारों के साथ-साथ लक्ष्य, विषयवस्तु, शिक्षाशास्त्र और मूल्यांकन को ध्यान में रखते हुए विभिन्न स्तरों के लिए विज्ञान की पाठ्यचर्या संबंधी सुझाव नीचे दिए जा रहे हैं:

प्राथमिक स्तर पर बच्चे को अपने परिवेश में घुलने-मिलने और साथ ही खुशी-खुशी पड़ताल हेतु तैयार करना चाहिए। इस स्तर पर मुख्य उद्देश्य हैं : बच्चे में अपने आसपास की दुनिया (भौतिक और जैविक दोनों) के प्रति उत्सुकता को परिपोषित करना, उसे खोजी कार्यों की ओर अग्रसर करने के साथ-साथ ऐसे कार्यकलापों में संलग्न करना जो मूलभूत संज्ञानात्मक क्षमता (मनः प्रेरक, निरीक्षण, वर्गीकरण इत्यादि) विकसित करें। डिजाइन और गढ़ाई, अनुमान व मापन जैसे कार्यों की ओर उन्मुख करे जिससे बाद में ये सभी तकनीकी व रचनात्मक क्षमता विकसित होने में नींव का काम कर सके। साथ ही इस स्तर पर मूलभूत भाषिक क्षमता को विकसित करना चाहिए ftle ckyuk] i<uk vkj fy[kuk 'kkfey gA ,lk oQoy foKku i<u oQ fy, ugh cfYd foKku i<r g, Hkh djuk "k:jh gA foKku vkj lkekftd foKku dk feykdj i;koj.k dk vè;;u djyuk mfpr gkxk ftle LokLF; ,d egÙoi.k iQkdl fcn gkA ikFkfed Lrj dh ijh vof/e fdlh Hkh idkj dh dkb ijh{kk u yh tk,] u gh xM ;k vd fn, tk, vkj u gh vxyh d{kk e tku l jkdk tk,A

mPp ikFkfed Lrj ij cPpk dk foKku oQ ljy fl¼krk dh tkudkjh nuh pkfg, yfdu ,lk vkl&ikl dh ifjfpr nfu;k oQ ekè;e l gh gkuk pkfg,A lkFk gh ml rduhdh vkj ekM;y cuku] lo o vU; dk;dykik oQ ekè;e l i;koj.k oQ ckj e ";knk l ";knk tkuu dh vkj ifjr djuk pkfg,A oKkfud fl¼krk oQ ckj e tkudkjh i;kxk ,o dk;dykik oQ ekè;e l gh mfpr gA lkefgd dk;dyki] lkfFk;k vkj f'k{kdk oQ lkFk cgl] vkdMk oQ lxg vkj LoQy vkj iMkl e bu lcdk in'kuh oQ ekè;e l fMLkly] f'k{k.k oQ egÙoi.k vo;o gku pkfg,A fu;fer ,o lkof/ eY;kdu 'k: dj nuk pkfg,A lh/ xM nu dh 0;oLFkk gkuh pkfg,A fdlh Hkh cPp dk iQy ugh fd;k tkuk pkfg,A vkBoh rd i< poQ lHkh fo|kfFk;k dk *ukoh* e io'k n nuk pkfg,A

ekè;fed Lrj ij fo|kFkh dk foKku dk ifjp; ,d fo"k; oQ :i e fn;k tkuk pkfg,] lkFk gh igy dh ryuk e ";knk mPp rduhdh ijd ekM;y cuku

oQ fy, Hkh ikRlkfgr djuk pkfg,A vkj mUg i;koj.k rFkk LokLF; oQ bn&fxn ?keu oky eík oQ fo'y"k.k vkj xfrfofèk;k l tkMuk pkfg,A l½kfrd fu;ek dk tkpu oQ fy, midj.k oQ :i e 0;ofLFkr i;kx rFkk lkFkd LFkkuh; ifj;ktuk, ftle foKku vkj ik|kfxdh 'kkfey gk bl voLFkk e ikB;p;k oQ e[; dke gA

mPp ekè;fed Lrj ij foKku vyx&vyx ldk;k oQ :i e i<k;k tkuk pkfg, vkj "kkj i;kx ,o leL;k lekèku ij gkuk pkfg,A ,u-ih-b- 1986 oQ rgr ekè;fed o mPprj ekè;fed ikB;Øek oQ chp xgj vrj dk gVku oQ fy, ikB;p;k oQ ck> dk roQlxr gkuk pkfg,A bl Lrj ij] fo"k; oQ e[; ikBk dh] {k=k e gb oreku ixfr dk è;ku e j[kr g, lkoèkkuhiod igpku dh tkuh pkfg,A उन्हें उपयुक्त सख्ती तथा गहराई से शामिल किया जाना चाहिए। ढेरों विषयों की सतही जानकारी देने की प्रवृति से बचना चाहिए।

7.3 विज्ञान में खोजी प्रवृत्ति और रचनात्मकता को प्रोत्साहित करना

- विज्ञान पाठ्यचर्या में सभी स्तरों पर ढाँचागत परिवर्तन लाना ज़रूरी है। कार्यकलापों, प्रयोगों, प्रौद्योगिकी मॉड्यूल्स, संदर्भीकरण आदि के माध्यम से रचनात्मकता और अनौपचारिक चैनल मसलन, परियोजना–प्रदर्शनी, बाल विज्ञान कांग्रेस आदि के माध्यम से पाठ्यचर्या–सहभागी और पाठ्यचर्येतर कार्यकलापों को बढ़ावा देना चाहिए।
- स्थानीय/ज़िला/राज्य स्तर पर फ़ीडर आयोजकों के साथ–साथ राष्ट्रीय स्तर पर विज्ञान और प्रौद्योगिकी मेला आयोजित करना ज़रूरी है ताकि खोजी/रचनात्मक प्रतिभा की खोज की जा सके और विज्ञान के प्रति इस तरह की प्रतिभा को विकसित भी किया जा सके। इस संदर्भ में वर्तमान गतिविधियों के स्तर को कई तरीकों का इस्तेमाल कर उठाना जरूरी है। इसके लिए गैर सरकारी संगठन, शिक्षक संगठन, राज्य व केंद्रीय स्तर की संस्थाओं के बीच अंतर्संवाद आदि; देश में मौजूद विशेषज्ञों को जागरूक करना और वित्तीय सहायता प्रदान करना इत्यादि हो सकता है।
- tgk rd lHko gk loQ i;kx@ ik|kfxdh& ekM;Yl dk ikB;iLrd e lfEefyr djuk pkfg,] lkFk gh budk vkrfjd eY;kdu Hkh gkuk pkfg, (10oh vkj 12oh d{kkvk e Hkh) A blh rjg tlk fd l>ko fn;k x;k g] vU; ikB;p;k&lgHkkxh vo;o 'kkfey fd, tku pkfg,A

7-4 ikB;iLroQ

- gekj n'k e Ldy tku oky vf/dk'k cPpk ([kkl dj xkeh.k bykoQ vkj xjhc ?kjk oQ)] lkFk gh f'k{kdk oQ fy, Hkh ikB;iLroQ gh ,dek=k miyCèk vkj ogu dju yk;d lk/u g blfy, vPNh foKku f'k{kk dk lcdk ,d leku miyC/ djoku oQ fy, ikB;iLrdk dk fodkl vkj mi;kx vkjfHkd ,o eyHkr lkr oQ :i e fd;k tkuk pkfg,A
- ikB;p;k pukok oQ fy, fofo/rk dk c<kok nuk gkxk] lkFk gh jk"Vh; ikB;p;k dh :ij[kk oQ rgr ikB;iLrd y[ku oQ odfYid rjhdk dk c<kok nuk gkxkA
- jk"Vh; o jkT; Lrj dh ikB;iLrd y[ku dh ifØ;k e lèkkj yk, tk,] lkFk gh blе f'k{kdk dk viu 0;kogkfjd vuHko dk Hkjiij ;kxnku nu oQ volj inku fd, tk,A

7-5 ijh{kk i.kkyh

- ikB;iLrdk e fn, x, dk;dyki@i;kx@ rduhdh ik:i dk vkrfjd eY;kdu gh gkuk pkfg,A ,l 10oh vkj 12oh dh ckM ijh{kkvk e Hkh ykx dj nuk pkfg,A
- 10oh o 12oh oQh ckM ijh{kkvk e l½krd i'u&i=k cukr le; è;ku j[kuk pkfg, fd i'u i;kx@rduhdh vk/kfjr gk] lkFk gh leL;kvk dh vkykpukRed le> o mUg

gy dju dh {kerk dh tkp djr gkA

- fo|kFkh dk vyx&vyx fo"k; dh vyx&vyx le; ij ijh{kk nu dh NV feyuh pkfg, vkj ckn e lkj ØfMVl tkM fn, tku pkfg,A 'k#vkr e ;g i;kx leL;keyd yx ldrk g yfdu ijh{kk dh otg l fo|kFk;k e tk ruko mRiUu gkr g mUg nj dju oQ fy, ;g rjhdk dkjxj lkfcr gk ldrk gA
- 10$2 oQ ckn reke cQmh; ;k jkT; Lrjh; lLFkkuk oQ }kjk yh tk jgh ijh{kkvk dh fofoèkrk@cgyrk dk [kRe djoQ ,d jk"Vh; Lrj dh tkp ijh{kk u'kuy VfLVx lfol (vkjEHk e mPp ekè;fed Lrj ij) 'k: dj nuh pkfg,A ;g iLrko rHkh lHko gk ldrk g tc ; reke lLFkku bl u'kuy VfLVx lfol oQ i{k e viu rgr gku okyh io'k ijh{kkvk dk [kRe dju oQ fy, jkth gk tk,] vU;Fkk bl iLrko oQ n"ifj.kke Hkh gk ldr gA

7-6 f'k{kdk dk l'kDrhdj.k

- n'k Hkj e f'k{kd f'k{kk dk;Øek e i.k cnyko ykuk pkfg,A ikB;Øe oQ vk/fudhdj.k oQ lkFk&lkFk foKku e f'k{kd f'k{kk oQ fy, "k:jh i;kx'kkyk fodflr dh tkuh pkfg,A
- mPp n{krk ikIr f'k{kd&if'k{kdk dh cgkyh gkuh pkfg, ftUg f'k{k.k dk yck vkj okLrfod vuHko gkA
- fujh{kdk vkj ljdkjh viQljk oQ jo;s e lèkkj yku oQ fy, mUg f'k{kdk dh Lok;Ùkrk dh "k:jr oQ ifr ifjr fd;k tkuk pkfg, ft le mudh vdknfed ftEenkjh Hkh cuh jg ldQA
- vLFkk;h vkj BoQ ij f'k{kdk dk cgky dju dh c<rh iofÙk dk [kRe dj ;kX; o if'kf{kr f'k{kdk dh fu;fDr LFkk;h rkj ij gkuh pkfg,A ,lk lHkh LoQyh voLFkkvk oQ fy, gkuk pkfg,A
- f'k{kdk oQ chp vkilh lokn gk] bl c<kok nr g, LoQy oQ Hkhrj vkj Ldyk oQ chp vdknfed lokn dk ikRlkfgr djuk pkfg,A
- f'k{kdk ij f'k{k.k oQ vykok nlj rjg oQh xj vdknfed dk;k dk yknu dh c<+ jgh iofÙk ij rRdky jkd yx tkuh pkfg,A
- ;kX; f'k{kdk dk buke vkfn nu dh 'k#vkr djuh pkfg,A

7-7 lerk

- foKku ikB;p;k dk lkekftd ifjoru oQ fy, mi;kx] rkfd lkekftd&vkfFkd fo"kerk dk de fd;k tk loQ vkj tMj] tkfr] èkeZ vkj {k=k vkèkkfjr iokxgk dk lkeuk dju e lgk;rk fey loQA
- fo"k;oLr bl idkj dh gk tk fofo/ idkj dh thou&'kfy;k oQ ifr lEeku tud #[k dk ikRlkfgr dj] Hky gh iQkdl lnHkhdj.k ij gkA
- tMj&fu"i{k f'k{kk dk ikRlkgu nu oQ fy, f'k{kdk oQ if'k{k.k (lokio vkj lokdkyhu) oQ nkjku mue tMj oQ ifr lonu'khy #[k fodflr dju dk i;kl gkuk pkfg,A
- f'k{kk oQ Lrj ij fo|eku lkekftd fo"kerk dk de dju gr] lkFk gh leku volj dk miyCèk djku gr vkb-lh-Vh- dk mi;kx gkuk pkfg,A

8- lHkkouk,j

fiNy db n'kdk l Hkkjr e foKku dh f'k{kk vuly> vrfojk/k vkj }}k dk {k=k jgh gA nloh rd foKku dk vfuok; fo"k; g, rhu n'kd chr x,] yfdu vf/dk'k fo|kFk;k oQ fy, ;g fujFkd gh lkfcr gvk] lkFk gh bldh x.koÙkk Hkh n;uh; gA gkykfd jk"Vh; Lrj ij foKku oQ ikB;Øe e èkheh xfr l gh

lgh] yfdu ifjiDork vkb g vkj ;g fo'o oQ Lrj ij foKku f'k{kk oQ vkt oQ #[k oQ lkFk dne l dne feykdj py jgh g] yfdu okLrfod vFkk e foKku f'k{k.k dk 0;ogkj oQ Lrj ij dkb iHkko ugh ik;k x;k gA gkykfd db xj ljdkjh lxBuk vkj lLFkkvk u dHkh oQn rk dHkh jkT; oQ lkFk feydj uokpkjh o lkgfld dne mBk, yfdu] bu i;klk dk e[;/kjk oQ foKku f'k{k.k ij dkb iHkko ugh iMkA vf/dk'k fo|kfFk;k oQ fy, foKku ,d gkvk g ftl jV dj gh dke pyk;k tkrk gA gkykfd dN fo|kFkh vlk/kj.k {kerk oQ lkFk mHkj dj lkeu vk, vkj ftudh dkfcfy;r of'od ekinM ij Hkh ryuh; gA blh rjg vd'ky f'k{kdk dh HkhM l dN f'k{kd 0;oLFkk dh lkjh lhekvk dk yk?kr g, vkn'k oQ :i e lkeu vk, g] yfdu v;kX;k vkj v{kek l Hkkj len e ; eg"k NkV&NkV }hi Hkkj lkfcr g, gA

Hkkjr e foKku f'k{kk oQ bl tfVy ifjo'k e rhu enn e[;r% xkj dju yk;d g& igykj gekj lfo/ku u ftl lerk dh ckr dh ml ikIr dju e foKku f'k{kk v lIQy jgh gA nljk] Hkkjr e foKku f'k{kk [kkth iofÙk o jpukRedrk dk c<kok ugh n ikrh] rFkk rhljk] fodjky ijh{kk i¼fr] ;fn i.k :i l ugh rk dkiQh gn rd ;g foKku f'k{kk oQ e[; ldVk e l ,d gA

bl vk/kj i=k e iQkdl leg u foKku ikB;p;k l lcf/r fofHkUu ennk vkj mudk dk;kfUor dju dh jkg e vkb ck/kvk ij fopkj fd;k g yfdu è;ku e[;r% rhu ennk ij gh j[kk x;k g ftudh vkj b'kkjk mijkDr ijkxkiQ e fd;k x;k gA

पहला, वर्ग, जाति, जेंडर व क्षेत्र के आधार पर समाज में व्याप्त विषमता को कम करने के लिए हमें विज्ञान पाठ्यचर्या का एक साधन के रूप में उपयोग करना होगा। पाठ्यपुस्तकें समता की सूचक होनी चाहिए, क्योंकि अधिकांश बच्चों और शिक्षकों के लिए अभी भी यही एकमात्र उपलब्ध व कम खर्च वाला संसाधन है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा के दिशा निर्देशन में वैकल्पिक पाठ्यपुस्तक लेखन को बढ़ावा देना चाहिए। आई.सी.टी. सामाजिक विषमता को कम करने में सहायक हो सकती है। दूर-दराज़ इलाकों तक सूचना संचार और कंप्यूटिंग संसाधन के रूप में आई.सी.टी. अवसरों की समानता के लिए महत्त्वपूर्ण साबित हो सकती है।

दूसरा, हमारे अनुसार, वर्तमान स्थिति में किसी भी तरह के गुणात्मक परिवर्तन के लिए विज्ञान शिक्षा में ढाँचागत बदलाव (Paradigm shift) लाना पड़ेगा। रटकर सीखने की प्रवृत्ति को खत्म करना चाहिए। पड़ताल या खोजी अंतर्दृष्टि को भाषा, डिजाइन व मात्रात्मक कौशलों द्वारा मजबूत करना होगा। स्कूलों में सह-पाठ्यचर्या व पाठ्यचर्येतर तत्वों को जगह देना ज़रूरी है, जो पड़ताल की क्षमता, खोजी प्रवृत्ति और रचनात्मकता को जागृत करे, भले ही इन तत्वों को बाह्य परीक्षा व्यवस्था में शामिल न किया जाए। अनौपचारिक चैनलों के विस्तार के लिए हम ज़ोर डालकर कहते हैं, उदाहरण के लिए पंचायत/ज़िला/राज्य स्तर के मेलों से प्रतिपुष्टि (feedback) एकत्र कर बड़े स्तर के राष्ट्रीय विज्ञान और प्रौद्योगिकी मेले का आयोजन करने से स्कूलों व शिक्षकों को प्रस्तावित ढाँचागत परिवर्तन के लिए प्रोत्साहन मिलेगा।

तीसरा, हम परीक्षा सुधार कार्यक्रम को राष्ट्रीय मिशन के रूप में (दूसरे अन्य गंभीर राष्ट्रीय मिशन की तरह) लेने का सुझाव देते हैं, जिसमें वित्त व उच्च-क्षमता प्राप्त मानवीय संसाधन की ज़रूरत पड़ेगी। यह मिशन वैज्ञानिकों, प्रौद्योगिकी से संबंधित लोगों, शिक्षाविदों और शिक्षकों को एक साझे मंच पर आने और परीक्षा के नए तरीकों को 'लांच' करने का अवसर प्रदान करने वाला होना चाहिए। ऐसे तरीके जो, परीक्षा की वजह से उत्पन्न होने वाले तनाव और प्रवेश परीक्षा को विक्षिप्त कर देनेवाली बहुलता को खत्म करे और महज विद्वत् क्षमता की जाँच न करके विविध क्षमताओं की जाँच करें।

लेकिन इस तरह के सुधार तभी संभव हैं जब शिक्षकों का सशक्तीकरण हो। किए गए सुधारों को लागू करने के लिए ज़रूरी है कि शिक्षक खुद को इतना सशक्त महसूस करे कि इसे वास्तविक रूप में कार्यान्वित कर सके, अन्यथा अच्छे से अच्छा सुधार केवल बात बनकर रह जाएगी। शिक्षक की सक्रिय भागीदारी से ही सुझाए गए उपरोक्त सुधार संभव हैं और इसका तरंगात्मक प्रभाव एक साथ सभी स्तरों पर विज्ञान शिक्षण पर पड़ेगा।

संदर्भ

1. **केली, ए. ई. और लेस, आर. ए. (2000),** *हैंडबुक ऑफ़ रिसर्च डिजाइन इन मैथमेटिक्स एंड साइंस एजुकेशन,* लारेंस अर्लबॉम एसोसिएट्स, महवाह, न्यू जर्सी।

2. **व्हाईट, आर. (2001)**, द रिवोल्यूशन इन रिसर्च ऑन साइंस टीचिंग, के. वर्जिनिया रिचर्डसन (संपा) *हैंडबुक ऑफ़ रिसर्च ऑन टीचिंग* (चतुर्थ संस्करण) में अमेरिकन एजुकेशनल रिसर्च एसोसिएशन, वाशिंगटन, डी.सी.।

3. **बर्लिनर, डी.सी. (2002),** एजुकेशनल रिसर्चः द हार्डेस्ट साइंस ऑफ़ ऑल *एजुकेशनल रिसर्चर,* 31(8),18-20।

4. **फ्रेजर, बी. जे. (1998)**, साइंस लर्निंग एनवायरनमेंटः एसेसमेंट, इफेक्ट्स एंड डिटरमिनेंट्स, फ्रेजर, बी.जे. और टॉबिन, के. जी. द्वारा संपादित पुस्तक के *इंटरनेशनल हैंडबुक ऑफ़ साइंस टीचिंग* (भाग-1) में, क्लूवर एकेडमिक, ड्रेख्त, नीदरलैंड।

5. **सापिरो, बी. (1998),** रीडिंग द फर्नीचरः द सेमियोटिक इंटरप्रेटेशन ऑफ साइंस लर्निंग एनवायरनमेंट, फ्रेजर, बी.जे. और टॉबिन, के.जी. (संपादित) के पुस्तक *इंटरनेशनल हैंडबुक ऑफ़ साइंस टीचिंग* (भाग-1), क्लूवर एकेडमिक, ड्रेख्त, नीदरलैंड।

6. **स्तेपानेक, जे. (2000),** *इट्स जस्ट गुड टीचिंग,* मैथमेटिक्स एंड साइंस एजुकेशन सेंटर, नार्थवेस्ट रीजनल एजुकेशनल लैबोरेटरी, पोर्टलैंड, ओरेगान, http//www.nwrel.org/msec/science_ing/whatising.html.

7. **डसेल, आर. ए. (1985)**, ट्वेंटी फाइव इयर्स ऑफ़ म्युच्युअली एक्सक्लूसिव डेवलपमेंटः न्यू साइंस करीकुला एंड द फिलॉस्फी ऑफ़ साइंस, स्कूल साइंस एंड मैथमेटिक्स, खंड-LXXXV, नवंबर 1985, 541-55।

8. **लीडरमैन, एन. (1992)** स्टूडेंट्स एंड टीचर्स' कंसेप्शंस ऑफ़ द नेचर ऑफ़ साइंसः ए रिव्यू ऑफ़ रिसर्च, *जर्नल ऑफ़ रिसर्च इन साइंस टीचिंग,* 29(4), 331-359।

9. **ड्राइवर, आर. (1975)** ''द नेम ऑफ़ द गेम'' स्कूल साइंस रिव्यू, 56 (197), 800-04।

10. **वेलिंगटन, जे. (1981)** "*व्हाट्स सपोज्ड टू हैपन सर? सम प्रॉब्लम्स विद डिस्कवरी लर्निंग", स्कूल साइंस रिव्यू,* सितंबर, 167-173।

11. **रामदास, जे.; नटराजन, सी.; चूनावाला, एस. और आप्टे, एस. (1996),** रोल ऑफ़ एक्सपेरिमेंट्स इन स्कूल साइंस, डायग्नोजिंग लर्निंग इन प्राइमरी साइंस भाग-3, होमी भाभा सेंटर फॉर साइंस एजुकेशन, मुंबई।

12. **केरी, एस.; इवांस, आर.; होंडा., एम.; जय, ई. और उनगार, सी. (1989),** ''एन एक्सपेरिमेंट इज व्हेन यू ट्राई इट एंड सी इफ इट वर्क्स: ए स्टडी ऑफ़ ग्रेड 7 स्टूडेंट्स अंडरस्टैंडिंग ऑफ़ द कंसट्रक्शन ऑफ सांइटिफिक नॉलेज'' *इंटरनेशनल जर्नल ऑफ़ साइंस एजुकेशन,* 11(5), 514–29)।

13. **वोस्नियाडाउ, एस. और ओरटॉनी,ए. (संपादकगण) (1989),** *सिमिलेरिटी एंड एनालॉजिकल रिजनिंग,* कैंब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, कैंब्रिज।

14. **सुटौन, सी. (1992),** *वर्ड्स, साइंस एंड लर्निंग,* ओपेन यूनिवर्सिटी प्रेस, बकिंघम।

15. **सेयर्स, आर. (1992),** *कल्चरल एंड लिंग्विस्टिक फैक्टर्स इन मैथमेटिक्स एंड साइंस एजुकेशन :* एन एनोटेटेड बिबियोग्राफी. सेंटर फॉर स्टडीज़ इन साइंस एंड मैथ्स एजुकेशन, यूनिवर्सिटी ऑफ़ लीड्स।

16. **कुलकर्णी, वी.जी. और गंभीर, वी.जी. (1981),** ''*दि इफ़ेक्ट ऑफ़ लैंग्वेज बैरियर ऑन द यूनिवर्सलाइजेशन ऑफ़ एजुकेशन'' इंडियन एजुकेशनल रिव्यू,* जनवरी 1981।

17. **ड्राईवर, आर. और एज्ले, जे. (1978),** ''पुपिल्स एंड पाराडिग्मस:'' ए रिव्यू ऑफ़ रिसर्च रिलेटेड टू कंसेप्ट डेवलपमेंट इन एडोलसेंट साइंस *स्टूडेंट्स, स्टडीज इन साइंस एजुकेशन*–5,61–84।

18. **ड्राईवर, आर.; स्क्वायर्स, ए.; रसबर्थ, पी. और वुड-रॉबिंसन, वी. (1994),** मेंकिंग सेंस ऑफ़ सेकेंडरी साइंस: *रिसर्च इनटू चिल्ड्रेंस आइडिया,* लंदन : रूटलेज।

19. **नटराजन, सी.; चूनावाला, एस.; आप्टे, एस. और रामदास, जे. (1996),** *स्टूडेंट्स आइडियाज एबाउट प्लांट्स. डायग्नोसिंग लर्निंग इन प्राइमरी साइंस, भाग-2,* होमी भाभा सेंटर फॉर साइंस एजुकेशन, मुंबई।

20. **महाजन, बी. और चूनावाला, एस. (1999),** इंडियन सेकेंड्री स्टूडेंट्स अंडरस्टैंडिंग ऑफ़ डिफरेंट आस्पेक्ट्स ऑफ़ हेल्थ इंटरनेशनल जर्नल ऑफ़ *साइंस एजुकेशन* 21(11), 1155–68।

21. **कैरी, एस. (1986),** ''कॉगनिटिव साइंस एंड साइंस एजुकेशन''*अमेरिकन साइकोलॉजिस्ट,* 41(10), 1123–1130।

22. **ची, एम.टी.एच.; फेल्टोविच, पी.जे. और ग्लेजर, आर. (1981)** ''कैटेगोराइजेशन एंड रिप्रेजेंटेशन ऑफ़ फिजिक्स प्रॉब्लम्स बाइ एक्सपर्ट्स एंड नोबिसेस'', *कॉगनीटिब साइंस* 5, 121–152।

23. **लारकिन,जे.; मैकडरमॉट, जे.; साइमन, डी.पी. और साइमन, एच.ए. (1980),** ''*एक्सपर्ट एंड नोविस परफार्मेंसेस इन सॉल्विंग फिजिक्स प्रॉब्लम्स,'' साइंस,* 208, 1335–1342।

24. **मिंटज्स, जे.; वांडरसी, जे. और नोवाक, जे. (संपादक मंडल) (2000),** *एसेसिंग साइंस अंडरस्टैंडिंग: ए ह्यूमन कंसट्रक्टिविस्ट व्यू,* एजुकेशनल साइकोलॉजी सीरिज, एकेडमिक प्रेस, सान डियागो, कैलिफोर्निया।

25. **ब्रॉडफुट, पी. एम. (1996),** *एजुकेशन, एसेसमेंट एंड सोसायटी: ए सोशियोलॉजिकल एनालिसिस,* ओपेन यूनिवर्सिटी प्रेस, बकिंघम और फिलाडेल्फिया।

26. **शिक्षा मंत्रालय (1996)**, एजुकेशन एंड नेशनल डेवलेपमेंट: रिपोर्ट ऑफ़ द एजुकेशन कमीशन 1964-66, पुन:प्रकाशल 1971 में एन.सी.ई.आर.टी.द्वारा, नयी दिल्ली।

27. **एन.सी.ई.आर.टी.(1975),** द *कॅरिकुलम फॉर द टेन-इयर स्कूल,* नेशनल काउंसिल ऑफ़ एजुकेशनल रिसर्च एंड ट्रेनिंग (एन.सी.ई.आर.टी.), नयी दिल्ली।

28. **एन.सी.ई.आर.टी. (1988),** *नेशनल कॉरिकुलम फॉर एलीमेंटरी एंड सेकेंडरी एजुकेशन-ए फ्रेमवर्क* (पुन: संशोधित पाठ), नेशनल काएउंसिल ऑफ़ एजुकेशनल रिसर्च एंड ट्रेनिंग (एन.सी.ई.आर.टी.), नयी दिल्ली।

29. **एन.सी.ई.आर.टी. (2000)**, *नेशनल कॅरिकुलम फ्रेमवर्क फॉर स्कूल एजुकेशन,* नेशनल काउंसिल ऑफ़ एजुकेशनल रिसर्च एंड ट्रेनिंग (एन.सी.ई.आर.टी.), नयी दिल्ली।

30. **कुमार के.; प्रियम, एम. और सक्सेना, एस. (2001),** *"लुकिंग बियांड द स्मोकस्क्रीन"* डी.पी.ई.पी. और प्राइमरी एजुकेशन इन *इंडिया,* इकनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली. इ.पी.डब्ल्यू. स्पेशल आर्टिकल्स. फरवरी 17, 2001.

31. **इंडियन एन.जी.ओ. (2002)**, *स्टेटस ऑफ़ कॅवरेज ऑफ़ नॉन-डी.पी.ई.पी. डिस्ट्रिक्ट्स अंडर एस.एस.ए.* (15-1-2002 को पुन: संशोधित) http//www.indianngos.com/issue/education/govt/project 2.htm

32. **धनकर, आर. (2003),** ''द *नोशन ऑफ़ क्वालिटी इन डी.पी.ई.पीच. पेडागॉजिकल इंटरवेंशन*'' एजुकेशन *डायलॉग.* खंड 1:1, मॉनसून 2003, 5-34।

33. **भानुमथी, एस. (1994),** ''*स्माल स्केल केमिकल टेक्निक्स*'' *केमिस्ट्री एजुकेशन* (अप्रैल-जून): 20-25।

34. **मानव संसाधन विकास मंत्रालय (1993),** *लर्निंग विदाउट बर्डन: रिपोर्ट ऑफ़ द एडवाइजरी कमिटी* एपाइंटेड बाइ द मिनिस्ट्री ऑफ़ ह्यूमन रिसोर्स डेवलपमेंट (एम.एच.आर.डी.), शिक्षा मंत्रालय, नयी दिल्ली।